हरिमोहन प्रामाणिक प्रणीत

यशोदानन्दन प्रामाणिक प्रकाशित

भारतवर्षीय

र कवियों का समय निरूपण

जिस को

० कु० बाबू रामदीन सिंह

के आज्ञानुसार

पण्डित सरयूप्रसाद मिश्र ने

ला में हिन्दी भाषा में अनुवाद किया

टना — "खड्गविलास" प्रेस — बांकीपुर।

ण्डीप्रसाद सिंह ने बाबकर प्रकाशित किया।

१८८९

श्रीगणेशाय नमः ।

भारतवर्षीय

संस्कृत कवियों का समयनिरूपण ।

प्रथमकाल (प्राचीनकाल) ।

गुणाढ्य * ।

कथा सरित्सागर से जाना जाता है कि गुणाढ्य कवि कात्यायन वर-रुचि के समसामयिक थे । यह कात्यायन एक वैदिक मुनि थे । इन ने स्वयं बहुत से ग्रन्थ बनाये हैं जिन के नाम ये हैं । श्रौतसूत्र, सामवेद का उपग्रन्थ, स्मार्त श्लोक, कर्मप्रदीप, अथर्ववेद की प्रातिशाख्य कारिका और महासागर के समान गम्भीर पाणिनीय व्याकरण पर महावार्त्तिक रचा है । वेद की सर्वानुक्रमणी भी इन्हीं कात्यायन मुनि की बनाई है । इस के सर्वानुक्रमणी नामक ग्रन्थ के भाष्यकार षड्गुरु शिष्य ने अपने बनाये भाष्य में कात्यायन के विषय में बहुत कुछ ज्ञातव्य बात लिखी है । उस का स्थूल मर्म यह है । 'वैदिक ग्रन्थकारों के बीच पहिले शौनक दूसरे उन के शिष्य आश्वलायन तीसरे कात्यायन और चौथे पतञ्जलि हुए'। पतञ्जलि ने कात्यायन के वार्त्तिक पर भाष्य किया है और कात्यायन के थोड़े ही पीछे ये उदय हुए थे । पांचवें ग्रन्थकार व्यास हैं । इन व्यास ने पतञ्जलि रचित योगसूत्र नाम ग्रन्थ की टीका लिखी है और सम्पूर्ण वेद का संग्रह कर के वेदव्यास नाम से संसार में प्रसिद्धि पाई । गुरु और शिष्य अथवा पिता और पुत्र भाव से एक दूसरे के पीछे होने से, प्रायः इन सब वैदिक मुनियों में थोड़ाही काल होना सम्भव है । परन्तु इन लोगों की ग्रन्थरचना के समय का विवेचन करने से इन के भिन्न स्थि-

* [illegible]

मानना के समय का क्रम ठीक नहीं बैठता है। देखो पातञ्जल योगदर्श का भाष्य बनाने वाले वेदव्यास पतञ्जलि मुनि के शिष्य अथ उन की अपेक्षा आधुनिक नहीं माने जा सकते क्योंकि अनेक पुराणों वेदव्यास ही को और सब वैदिक मुनि लोगों का गुरु लिखा है। सो वे वृद्ध हो। षड्गुरु शिष्य के कथनानुसार कात्यायन मुनि बहुत प्राची जान पड़ते हैं *। अमर कोश में जो दुर्गा भगवती के नामों में एक कात्यायनी नाम भी लिखा है, बहुत से लोग उस का निर्वचन (व्युत्पत्ति) ऐसा करते हैं कि भगवती दुर्गा किसी कल्प में कात्य अथवा कात्याय मुनि की कन्या के रूप में अवतार लिये थीं। इस कारण उन का एक नाम 'कात्यायनी' भी है। अतएव यह भी कात्यायन मुनि के अति प्राचीन होने में एक प्रमाण है। परन्तु कथा सरित्सागर के कर्त्ता कहते हैं कि कात्यायन वररुचि, महादेव के शाप से वत्सराज की राजधानी कौशाम्बी नगरी में जन्मे थे †।

* पाणिनि की भूमिका में 'गोल्डस्टूकर' महाशय लिखते हैं कि कात्यायन पतञ्जलि के समय में थे। अर्थात् वे सन् ईस्वी से १८०—१९० वर्ष पहिले जीवित रहे होंगे।

† इस से यह बात विशेषता से सिद्ध होती है कि वे पहिले कात्यायन मुनि नाम से प्रसिद्ध थे। पीछे वेही महादेवजी के शाप से कलियुग में जन्म लेकर वररुचि नाम से ख्यात हुए। इसी लिये कहीं २ पर उन्हें कात्यायन वररुचि भी कहते हैं क्योंकि कलाप व्याकरण के रचयिता सर्ववर्माचार्य ने जोकि शालिवाहन नाम किसी राजा के मन्त्री थे इन्हीं कात्यायन वररुचि के व्याकरण से सब कृदन्त शब्द सुगम होते विचार व्याकरण में पृथक् कृदन्त प्रकरण नहीं लिखा। इसी ध्यान से कलापव्याकरण के वृत्तिकार दुर्गसिंह लिखते हैं कि—

" वृक्षादिवदमी रूढाः कृतिना न कृताः कृतः।
कात्यायनेन ते सृष्टा विबुद्धिप्रतिबुद्धये॥ "

अर्थात् वृक्ष आदि शब्दों की नाईं कृदन्त के सब शब्द रूढ (स्वार्थ के बोधन में प्रसिद्ध) हैं। इस हेतु से सर्ववर्माचार्य ने पृथक् कृदन्त की रचना न की। अबोधों के बोधार्थ कात्यायन ने उन की प्रक्रिया रची है। इस स्थान पर दुर्गसिंह की वृत्ति पर पञ्जिकाकार 'त्रिलोचनदास' ने लिखा है 'कात्यायनेन वररुचिशरीरं परिगृह्य' इत्यादि अर्थात् कात्यायन वररुचि का शरीर धारण कर के इत्यादि। इस से भी कात्यायन ने दूसरा जन्म लिया, यह आशय सूझ पड़ता है। गरुडपुराण में जो कुमार नामक व्याकरण का उल्लेख है उस में कार्त्तिकेय वक्ता और कात्यायन श्रोता कर के लिखे हैं। इन बातों से जानना चाहिये कि कात्यायन मुनि, वररुचि से न्यारे कोई और ही हैं।

कात्यायन लड़कपन ही से अति अद्भुत बुद्धिमान् थे। वे नाट्यशाला में किसी नाटक का खेल देखते और सुनते तो उसे अपनी माता के निकट आ के समग्र आद्योपांत कह दे सकते थे और जनेऊ होने के पहिले ही से व्याड़ि (व्याडि) आदि मुनियों से सुने प्रातिशाख्य को सहज में कण्ठाग्र कह जा सकते थे। कुछ काल पीछे वे वर्ष मुनि के शिष्य हुए और थोड़ेही समय में वेद वेदांग में इतना अधिक व्युत्पन्न हो गये कि एक वार व्याकरणविषयक विचार में पाणिनि से भी बढ़ गये थे। केवल महादेव के ही अनुग्रह से अन्त में पाणिनि की जीत हुई और कात्यायन ने महादेव जी का क्रोध शांत होने के लिये स्वयं पाणिनि के व्याकरण को पढ़ कर उस पर वार्तिक बनाया। पश्चात् वे पाटलिपुत्र के महाराज नन्दराज के मंत्री पद पर नियुक्त हुए। सोमदेव के लिखे ऊपर उक्त वर्णन के पढ़ने से कात्यायन बहुत आधुनिक जान पड़ते हैं। इस का कारण यह है कि कात्यायन को जिस नन्द राजा का मंत्री कर के निर्देश किया * है वह चन्द्रगुप्त के ठीक पहिले पाटलिपुत्र का राजा था। इतिहास जाननेवाले लोग चन्द्रगुप्त के राज्य का समय, खीष्टाब्द के आरम्भ से पूर्व तीसरी या चौथी शताब्दी के बीचही में रखते हैं। अतः यदि चन्द्रगुप्त को खीष्टाब्दारम्भ से तीन सौ वर्ष पहिले रक्खें तो कात्यायन का समय उस के कुछ थोड़े ही पूर्व में हो सकता है † । केवल इन बातों से मुनि लोगों की विद्यमानता का समय निरूपण करना ठट्ठा नहीं है क्योंकि कहीं किसी लेख से पाणिनि वेदव्यास की अपेक्षा अति नवीन जान पड़ते हैं और कहीं वेद-

---

* ऐसा सुनने में आया है कि जिस समय प्रसिद्ध योद्धा महावीर सिकन्दर (जो सन् ईस्वी से ३५६ वर्ष पहिले जन्मा था) भारतवर्ष पर चढ़ आया था, उन दिनों महानन्द बौद्ध [illegible] वेदक और बहुत से ब्राह्मण [illegible] को साथ ले के उस के विरुद्ध युद्ध के लिये खड़ा हुआ था। इतिहास जाननेवालों के समझ में नन्द चन्द्रगुप्त से सन् ईस्वी से ४०० वर्ष पहिले वर्तमान था।

† कश्मीर देश के राजतरंगिणी नाम के इतिहासग्रन्थ में भी पाणिनि और कात्यायन को नन्द और चन्द्रगुप्त के सम कालिक लिखा है। यह बात १०=५ शक वर्ष के [illegible] की 'तत्त्वबोधिनी' नामक पत्रिका के ६० पृष्ठ में लिखी है पर राजतरंगिणी में कहाँ लिखा है सो नहीं बतलाया है। पाणिनि विक्रमादित्य के बहुत पहले और विक्रमादित्य [illegible] के समय में थे। [illegible] कि इन बातों से पाणिनि कितने प्राचीन जान पड़ते हैं।

व्यास उन की अपेक्षा नवीन बोध होते हैं। ऐसी भी कहावत प्रचलित कि पाणिनि अपना व्याकरण बना के वेदव्यास के पुराण में लिखे हुए प को व्याकरण से अशुद्ध कह कर खण्डन करने लगे। परन्तु एक रात्रि उन्हें स्वप्न हुआ कि कोई महापुरुष आ के बड़े क्रोध से एक श्लोक में उ को फटकार रहा है।

> " यान्युज्जहार माहेशाद् व्यासो व्याकरणार्णवात्।
> तानि किं पद रत्नानि सन्ति * पाणिनिगोष्पदे ॥"

अर्थात् व्यासदेव ने महादेव जी के रचित व्याकरण रूपी समुद्र से जिन सब पदरत्नों का उद्धार किया है, क्या वे पाणिनि के बनाये व्याकरण रूपी गोष्पद में समा सकते हैं ? † ॥

यह उद्भट श्लोक यदि बिना जड़ का ढकोसला न हो तो पाणिनि को व्यासदेव से बहुत पीछे समझना होगा और देखने में भी आता है कि पाणिनिकृत व्याकरण के भाष्यकार पतञ्जलि हैं और इन्हीं पतञ्जलि के बनाये पातञ्जलयोगदर्शन के भाष्यकार वेदव्यास हैं। अतएव ऐसे गोल माल के झमेले में यही समझ के मौन होना पड़ता है कि ऋषिलोग योग के बल से चिरञ्जीव होते हैं। इसी कारण से जभी तभी उन के बनाये नाना ग्रन्थों का प्रकाश असम्भव नहीं है। कथासरित्सागर के लिखे अनुसार महर्षि वेदव्यास को राजा नन्द या चन्द्रगुप्त के समसामयिक अथवा उन के उत्तर वर्ती कहने का कदापि हियाव नहीं बंधता है क्योंकि उस लेख से पुराणादिक आधुनिक भये जाते हैं। पुराणादिक यदि सच मुच अति नवीन होते तो चाणक्य पण्डित ने जिन पुराणादिकों में से नीति विषयक वाक्य चुने हैं वे उन पुराणादि को विशेष गौरव के साथ शास्त्र न मानते और अपने सङ्कलित चाणक्यशतक के आरम्भ में

" नानाशास्त्रोद्धृतं वक्ष्ये राजनीति समुच्चयम् " §

यह प्रतिज्ञा न लिखते। पुनः जो लोग हिन्दूशास्त्रों का आधुनिक होना सिद्ध करने में कुछ भी गई (त्रुटि) नहीं लगाते हैं वे भी कहते हैं कि

---

* यहां पर काशीखण्ड की टीका में ' मान्ति ' ऐसा पाठान्तर है। अनुवादक।

† मधुसूदन सरस्वती ने प्रस्थानभेद में पाणिनीय व्याकरण को माहेश्वर व्याकरण कहा है और कलाप व्याकरण की पञ्जिका के अन्त में एक श्लोक लिखा है जिसमें कि माहेश्वर व्याकरण को पाणिनीय व्याकरण से भिन्न करके निर्देश किया है। यथा—

" माहेश्वरव्याकरणेनोक्तम्" ।

§ अर्थात् नाना शास्त्रों से वचन इकट्ठे कर के राजनीति कहूंगा। अनुवादक।

कुरुक्षेत्र में महाभारतयुद्ध ख्रीष्टाब्दारम्भ से १४०० वर्ष पूर्व हुआ और उस समय व्यासदेव जीवते थे। इस गणनानुसार कुरुक्षेत्र के युद्धकाल से नन्दराजा के समय तक बीच में एक सहस्र वर्ष बीतते हैं *।

सोमदेव भट्ट के, ऊपर उक्त वचन से गुणाढ्य कवि कात्यायन वररुचि के तुल्यकालिक सिद्ध होते हैं। विक्रमादित्य के सम्वत् चलने के अर्थात उन के राज्य पर बैठने के अल्प से अल्प ढाई सौ वर्ष पहिले गुणाढ्य वर्तमान थे। वासवदत्ता के पुराने टीकाकार जगद्धर लिखते हैं कि गुणाढ्य कवि ने महादेव जी के मुख से सुन के राजा वड्डाह के चरित्र के वर्णन में वड्डाहकथा (बृहत्कथा) नामक ग्रन्थ रचा †। मिथिलाधीश राजा शिव सिंह के आज्ञानुसार विद्यापति ठाकुर ने जो पुरुषपरीक्षा नाम की एक पोथी लिखी है, उस के बाईसवें अध्याय से जाना जाता है कि राजा विक्रमादित्य के समान समय में वड्डाह नामक एक राजा था। उस की वड्डाह ने पूर्ण कोई श्लोक सुन राजा विक्रमादित्य उस से मिलने गये थे। इस ठौर अब सोचना चाहिये कि बृहत्कथा यदि वड्डाह राजा के कहानी की पोथी है तो निःसन्देह यह राजा विक्रमादित्य से पीछे बनी होगी। तब तो बृहत्कथा के बनाने हारे गुणाढ्य, विक्रमादित्य के नवरत्नों में से वररुचि के समसामयिक निर्द्धारित हो सकते हैं। पर यह बात सत्य

---

* इसी प्रकार के [illegible] कि [illegible] हुए हैं।

† "बृहत्कथा" वड्डाह इति प्रसिद्धस्य राज्ञः कथा। [illegible] वड्डाहकथा। गुणाढ्यो नाम कविः। तेन किल भगवतो महादेवस्य मुखकमलात् [illegible] निबद्धा। यथा—

> "[illegible]
> [illegible]
> [illegible]
> [illegible]"

[illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible]

चाणक्य *।

चाणक्य, मगध देश के राजाधिराज चन्द्रगुप्त के मन्त्रिपद पर नियुक्त थे और चन्द्रगुप्त का राज्यकाल आज से लगभग २१०० वर्ष पहिले जाना जाता है। इस से चाणक्य भी उतने वर्ष पूर्व के सिद्ध होते हैं † मुद्राराक्षस में चाणक्य का जैसा वृत्तान्त लिखा है, उस से ये चन्द्रगुप्त के समकालिक समझे जाते हैं किन्तु चन्द्रगुप्त के पहिले नन्दराज थे। उन के तुल्यकालिक गुणाढ्य कवि ने बृहत्कथा नामक ग्रन्थ बनाया है उस में चाणक्य और चन्द्रगुप्त का वर्णन मिलता है। उस से गुणाढ्य की अपेक्षा चाणक्य ही प्राचीन बोध होते हैं। फलतः इस बात के मान लेने में कथा सरित्सागर की उल्लिखित बात कहती है। निदान दोनों के सामञ्जस्य की, केवल एक ही युक्ति यह है कि राजतरङ्गिणी के लिखे अनुसार पाणिनि, पतञ्जलि, कात्यायन, गुणाढ्य, चाणक्य, नन्द और चन्द्रगुप्त इन सब को समसामयिक मान लेवें।

चाणक्य ने नाना पुराण आदि से संग्रह कर के 'चाणक्य सार संग्रह' नाम एक नीति का ग्रन्थ बनाया। इस का इतना अधिक प्रचार है कि विद्यार्थी लोग लड़कपन से ही इस के श्लोकों को घोख २ के कण्ठ करते हैं। इस के अतिरिक्त पहिले इनने कोई कोष बनाया था क्योंकि कई टीकाकार उस के वचनों को प्रमाणरूप से उठा के लिखते हैं।

---

* कामन्दकीय नीतिसार में चाणक्य का दूसरा नाम विष्णुगुप्त लिखा है। और [illegible] नाम कोष में इनको वात्स्यायन ऋषि भी नामान्तर (दूसरा नाम) कहा है। यथा :—

" विष्णुगुप्तस्तु कौण्डिन्यश्चाणक्यो द्रोमिलोऽङ्गुलः।
वात्स्यायनो मल्लनागः पक्षिलस्वामिनावपि॥"

अर्थात् विष्णुगुप्त, कौटिल्य, (कौटिल्य) द्रोमिल, अंगुल, वात्स्यायन, मल्लनाग, पक्षिल और स्वामी इतने नाम चाणक्य के हैं।

देखो [illegible] इस से ज्ञात पड़ता है कि [illegible] अवतार हैं, [illegible] वात्स्यायन ऋषि के अवतार रहे।

† देखो [illegible] जिसे सन् १८८१ ई० में [illegible] का नीतिसार कहा के लिखा है।

कामन्दक।

ये चाणक्य के शिष्य थे। इन ने 'कामन्दकीय नीतिसार' नामक एक नीतिशास्त्र का ग्रन्थ बनाया है। नहीं निश्चय होता कि ये किस समय में थे। परन्तु अपने ग्रन्थ में ये ऋषियों के नीतिवाक्यों के सङ्कलन के साथ यह भी लिखते हैं कि मैं ने चाणक्य के नीतिग्रन्थ का सहारा लिया है। चाणक्य को छोड़ न्यारे किसी अर्वाचीन आचार्य का नामोल्लेख उन ने अपने ग्रन्थ में नहीं किया है। इस से पता ज्ञात होता है कि ये चाणक्य के पीछे हुए हैं।

माघ।

ये प्रसिद्ध कवि हैं। यद्यपि अपने रचित शिशुपालवध नामक महाकाव्य के अन्त में इन ने अपने वंशादि का परिचय दिया है * तो भी उस के द्वारा हम लोगों की इष्ट सिद्धि नहीं होती क्योंकि ये कवि कौन से देश और समय में हुए सो उस से नहीं बतलाया जा सकता। पण्डित वर श्रीयुत ईश्वरचन्द्रविद्यासागर महाशय ने निज रचित 'संस्कृत भाषा और संस्कृत साहित्य विषयक प्रस्ताव' नामक पुस्तक के

---

(१) सर्वाधिकारी सुकृताधिकारः श्रीधर्मनाथस्य बभूव राज्ञः।
असक्तदृष्टिर्विरजाः सदैव देवोऽपरः सुप्रभदेवनामा ॥ ८० ॥
तस्याभवद्दत्तक इत्युदात्तः क्षमी मृदुर्धर्मपरस्तनूजः ॥ ८२ ॥
श्रीशब्दरम्यकृतसर्गसमाप्तिलक्ष्म
लक्ष्मीपतेश्चरित कीर्त्तन चारुमाघः।
तस्यात्मजः सुकविकीर्तिदुराशयादः
काव्यं व्यधत्त शिशुपालवधाभिधानम् ॥ ८४ ॥

माघ २१ सर्ग।

अर्थात्—संसारकार्यरतनित्य प्रजापालित। सर्वेश देव इव सुप्रभदेव साधु ॥
श्रीधर्मनाथ नृप के सुत तासु सुत। धर्मोत्तमो मृदुल दत्तकनाम नीके ॥
मा॰ यह दुर्लभसत्कवीकी। सत्कीर्ति चाहि शिशुपालवधाख्य करी।
अङ्कितसमापति सर्वसर्ग। श्रीशब्द वर्णन मनोहर काव्य कीन्हो ॥

'अनुत्सूत्रपदन्यासा सद्वृत्तिः सन्निबन्धना।
शब्दविद्येव नो भाति राजनीतिरपस्पशा॥'

माघ २ सर्ग ११२ श्लोक।

अर्थात् जो राजनीति, नीति शास्त्र का डेग भर भी उल्लङ्घन नहीं करती और भृत्यों को अच्छी जीविका तथा अच्छे धन धरती (जागीर) दिलवाती है यदि वह भी भेदुए दूतों से काम न लेती हो तो व्याकरण विद्या की उस पुस्तक की नाईं नहीं सुहाती है जिस में पाणिनीय अष्टाध्यायी के सूत्रों ही से सब प्रयोग साध लिये जाते हैं एतादृशन्यास नाम ग्रंथ का आधार लिया है और जिस में सूत्रों की वृत्ति अच्छी बनी है और पातञ्जलभाष्य को भी भले उठाया है परन्तु पस्पशा* को छोड़ दिया है।

यह बात सत्य जंचती है कि किरातर्जुनीय और शिशुपालवध ये दोनों काव्य अर्थांश में आपस में बड़ा मेल खाते हैं किन्तु कौन किस की अनुकृति है इस का भेद तभी खुल सकता है जब कि खोज करके निर्णय किया जावे कि इन दोनों में से पहिले किस का नाम पुराने समय में मिलता है। सो पुराने उवखानादि में माघ का नाम जैसा मिलता है वैसा भारवि का नहीं मिलता। इस पकड़ से मैं ने माघ को भारवि से प्राचीन मान के निर्देश किया है॥

ग्रन्थ के रचना की शैली देखने से माघ और भारवि ये दोनों ग्रन्थकर्ता कालिदास की अपेक्षा नवीन समझ पड़ते हैं क्योंकि कालिदासकृत रघुवंश के नवम सर्ग में जो द्रुतविलम्बित छन्द है उन के चौथे चरण में जैसा यमक मिलता है, वैसा यमक, माघकृत शिशुपालवध और भारवि कृत किरातार्जुनीय के किसी२ द्रुतविलम्बित के चरणों में ग्राथित मिलता है।

रघुवंश में यथा—

गजवती जवती ग्रहयाचमूः। (९।१०) †
भुजलतां जडता मबलाजनः। (९।४३) §

माघ काव्य में यथा—

नवपलाश पलाशवनं पुरः स्फुट पराग परागतपङ्कजम्।
मृदुलतान्त लतान्त मलोकयत् ससुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः॥ (माघ ६।२)

इत्यादि।

---

* व्याकरण के श्लोकवार्तिक को पस्पशा कहते हैं। अनुवादक।

† अर्थात् राजा दशरथ की सेना में अनेक हाथी और बड़े डीलडौल घोड़े थे। अनुवादक।

§ अर्थात् स्त्रियों ने लता तुल्य अपनी भुजा को निश्चल कर दिया। अनुवादक।

' अनुत्सूत्रपदन्यासा सद्वृत्तिः सन्निबन्धना ।
शब्दविद्येव नो भाति राजनीतिरपस्पशा ॥ '

माघ २ सर्ग ११२ श्लोक।

अर्थात् जो राजनीति, नीति शास्त्र का रंग भर भी उल्लंघन नहीं करती और भृत्यों को अच्छी जीविका तथा अच्छे धन धरती (जागीर) दिलवाती है यदि वह भी भेदुए दूतों से काम न लेती हो तो व्याकरण विद्या की उस पुस्तक की नाई नहीं सुहाती है जिस में पाणिनीय अष्टाध्यायी के सूत्रों ही से सब प्रयोग साध लिये जाते हैं न्यासादशन्यास नाम ग्रंथ का आधार लिया है और जिस में सूत्रों की वृत्ति अच्छी बनी है और पातञ्जलभाष्य को भी भले उठाया है परन्तु पस्पशा* को छोड़ दिया है।

यह बात सत्य जंचती है कि किरातर्जुनीय और शिशुपालवध ये दोनों काव्य अर्थांश में आपस में बड़ा मेल खाते हैं किन्तु कौन किस की अनुकृति है इस का भेद तभी खुल सकता है जब कि खोज करके निर्णय किया जावे कि इन दोनों में से पहिले किस का नाम पुराने समय में मिलता है । सो पुराने उपाख्यानादि में माघ का नाम जैसा मिलता है वैसा भारवि का नहीं मिलता । इस पकड़ से मैं ने माघ को भारवि से प्राचीन मान के निर्देश किया है ॥

ग्रन्थ के रचना की शैली देखने से माघ और भारवि ये दोनों ग्रन्थकर्ता कालिदास की अपेक्षा नवीन समझ पड़ते हैं क्योंकि कालिदासकृत रघुवंश के नवम सर्ग में जो द्रुतविलम्बित छन्द है उन के चौथे चरण में जैसा यमक मिलता है, वैसा यमक, माघकृत शिशुपालवध और भारवि कृत किरातार्जुनीय के किसी२ द्रुतविलम्बित के चरणों में बाधित मिलता है।

रघुवंश में यथा —

गजवती जवती महयाचमूः । (९ । १०) †
भुजलतां जडता मबलाजनः । (९ । ४३)

माघ काव्य में यथा—

नवपलाश पलाशवनं पुरः स्फुट पराग
मृदुलतान्त लतान्त मलोकयत्

' आद्ध्याद्न्धकारे रतिमातिशयनीमिति ' ।
अर्थात् अन्धकार में विशेषता विशिष्ट प्रीति आधान करे ॥

राजा भर्तृहरि ।

कलियुग लगने पीछे अनुमान ३००० वर्ष बीतने पर भर्तृहरि उत्पन्न हुए। इन की जन्मभूमि उज्जैन है। उज्जैन का पुराना नाम अवन्ती है। यहीं पहिले पहिल सेन्धिया की राजधानी थी और उसी से इसे आज लों सेन्धिया के पूर्वजों की राजगद्दी कहते हैं। यह शिप्रा नदी के दक्षिणतट पर बसी थी। राजा भर्तृहरि ने संन्यास धारण कर शिप्रा नदी के तीर धरती के भीतर एक गुप्त गुहा में योगसाधन किया था। वह गुहा अब खोद के निकाली गई है। वह पहाड़ का पत्थर काट के बनाई गई थी।

इन महा कवि के रचित काव्यादि ग्रन्थों के नाम ये हैं। नीतिशतक, शृङ्गारशतक और वैराग्यशतक। ये व्याकरण और अलङ्कार में भी प्रसिद्ध पण्डित थे। इन की बनाई हरिकारिका की * जो कि व्याकरण का ग्रन्थ है कारिकाओं को प्रमाणरूप से शब्दशक्ति प्रकाशिका और दशरूपक इत्यादि पुस्तकों में उठा के लिखा है।

कुसुम देव।

यह राजा भर्तृहरि के सभासद् थे और इन का रचित दृष्टान्तशतक नामक एक ग्रन्थ है।

[देखो काव्यसंग्रह २१७ पृष्ठ और श्रीयुत नन्दकुमार कविरत्न रचित ज्ञानसौदामिनी ९३ पृष्ठ ।]

वेषण है। स्कन्दपुराणीय कुमारिकाखण्ड के वचनानुसार जाना जाता कि कलियुग लगने से ३०२२ वर्ष पीछे ये उज्जैन के राज्य पर बैठे। स्कन्दपु० कुमारिका खंड का वह वचन यह है—

"तत स्त्रिषु सहस्रेषु विंशत्याद्यधिकेषु हि।
भविष्यद्विक्रमादित्यराजः सोऽथ प्रणश्यते॥"

अर्थात् कलियुग लगने से तीन सहस्र बाईस वर्ष पश्चात् विक्रमादित्य राजा होगा पर वह भी अटल न रहेगा। कलियुग के लगे आज ४६६७ वर्ष हुए और विक्रमादित्य का चलाया १९२३ संवत् है। यदि विक्रमादित्य के जन्म से उन का संवत् चला ऐसा मानें तो स्कंदपुराण कुमारिकाखण्ड के वचन से मेल नहीं खाता क्योंकि ४६६७ में से १९२३ घटा दिया तो ३०४४ वर्ष बचते हैं। हां, विक्रमादित्य का जन्म यदि कलियुग लगे पीछे ३०२२ वर्ष में और संवत् का आरम्भ उन के राज्याभिषेक के समय से अर्थात् कलियुग लगे पीछे ३०४४ वर्ष से मानें तो और गड़बड़ अध्याय नहीं रह जाता। शालिवाहन का शक संवत् १३५ में चला। इन से कोई २ यह निकालते हैं कि संवत् विक्रमादित्य के जन्म दिन से और शक शालिवाहन की मृत्यु के दिन से चला होगा क्योंकि ऐसा तर्क कर लिये बिना अन्य किसी गणना से उन दोनों राजाओं का परस्पर आम्हनी सामना सिद्ध होना सुघट नहीं है। विक्रमादित्य की २२ वर्ष की अवस्था बीतने पर संवत् का आरम्भ माना जावे तो भी हमारी समझ में कोई अनुपपत्ति नहीं जान पड़ती।

विक्रमादित्य ने एक कोष बनाया उस की इतनी मान्यता थी कि मेदिनी आदि कोषों के बनानेहारे पण्डितलोग भी उस के वाक्यों को प्रमाण रूप से अपने ग्रन्थों में उपन्यस्त करते हैं और इन ने भूगोल के वर्णन में भी एक पुस्तक रची थी। इन्हें एक बावली दिखाई दी। उस ने इन्हें एक समस्या पूरी करने के लिये दी। उसे इनने तुरन्तही पूरी करदिया। इस इस्तकथा से छिपा नहीं रह जाता है कि ये अच्छे पुर्जीले कवि थे।

इसी विक्रमादित्य ने अपने सभासद नव पण्डितों को 'रत्न' यह पदवी दी थी। वे सबो रत्न एक में मिला के नवरत्न कहाते हैं। उन के नाम निम्न लिखित श्लोक में मिलते हैं।

"धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंहशङ्कुवेतालभट्टघटकर्परकालिदासाः।
ख्यातोवराहमिहिरो नृपतेः सभायां रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य॥"

घटकर्पर वररुचि वराहमिहिर * बुद्धि विशाल ।
कालिदास ये नवरतन विक्रम भूपति साल ।
वीरन्ह कवीन्ह नाम नित जागत उज्ज्वल जात ।

धन्वन्तरि, क्षपणक, अमरसिंह, शंकु, वेतालभट्ट, घटकर्पर, का-
वराहमिहिर और वररुचि । इन नवों पण्डितों में से कौन कि-
अभ्यर्हित (पूजित) था, इस का कुछ निश्चय नहीं है । इसलिये,
मैं जिस क्रम से नाम दिये गये हैं, उसी क्रम से मैं एक २ का
बतलाता हूं ।

इन नवरत्नों ने अलग २ एक २ श्लोक रचा है । उन नव श्लो-
समुदाय को भी नवरत्न कहते हैं ।

धन्वन्तरि ।

ये महाशय आयुर्वेद के प्रसिद्ध पण्डित थे । नवरत्न के श्लोकों में
का श्लोक पढ़ने से स्पष्ट विदित होता है कि इनमें भी कवितादि

क्षपणक ।

नवरत्न के श्लोकों के बीच तीसरा श्लोक इन का बनाया है ।

'नीतिर्भूमिभुजां नतिर्गुणवतां ह्रीरङ्गनानां धृति-
र्दम्पत्योः शिशवो गृहस्य कविता बुद्धेः प्रसादो गिराम् ।
लावण्यं वपुषः स्मृतिः सुमनसां शान्तिर्द्विजस्य क्षमा
शक्तस्य द्रविणं गृहाश्रमवतां स्वास्थ्यं सतां मण्डनम् ॥'

अर्थात्—नीति नरेशन्ह को गुणवन्तन्ह को नति ... जन
धीरजदम्पति को गृह के शिशु धीको गिरा गिर को सरल
रूप सरूप को प्राज्ञन्ह को स्मृति विप्र को शान्ति बली को छि
वित्त गृहस्थन को अरु सन्तन को गहनो मन की चित

अमरसिंह † ।

अग्निपुराण में जिस ढङ्ग से श्लोकबद्धकोष ग्रन्थ लिखा है,

---

* कोई २ समझते हैं कि वराह और मिहिर ये दो जन थे । एक २ आधे २ थे । दोनों मिला के एक ही रत्न गिने जाते थे ।

† इदममरसिंह नामक एक कोष है । देखो सार्वभौमकृत रायमुकुट की टीका

म्हु ने उसी ढङ्ग से 'लिङ्गानुशासन' नाम एक श्लोकबद्ध कोष बनाया। का इतना प्रचुर प्रचार है कि संस्कृत विद्यारम्भ में लगभग सब ार्थी उस को कण्ठाग्र करते हैं।

किसी २ ग्रन्थ में लिखा मिलता है कि ये हेम सिंह के शिष्य थे। अमर त अमरमाला और अमरकोष इन दो ग्रन्थों को छोड़ शेष सब ग्रन्थ ्राचार्य ने जलादिये। पृथुराजचरित नामक काव्य में लिखा है कि ों की भाँति ये भी मोरपङ्ख रखते थे। परन्तु और लोग स्थिर करते कि ये बौद्ध थे और डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र आदि पण्डित लोग ुमान करते हैं कि गया जी का प्रसिद्ध बौद्धमन्दिर इन्हीं का बन- या है। जेनरल कनिङ्हम महाशय समझते हैं कि यह बौद्धमन्दिर ष्टीय चौथी शताब्दी से छठवीं शताब्दी तक के बीच में कभी बना ा। इस मन्दिर में जो कुछ लेख खुदा है उस से प्रकट होता है कि र सिंह खीष्टीय पाँचवीं शताब्दी में सुदेह थे *।

शङ्कु।

नवरत्न के श्लोकों में चौथा श्लोक इन का रचित है। यथा—

"धर्मः प्रागेव चिन्त्यः सचिवमतिगतिर्भावनीया सदैव
ज्ञेयं लोकानुवृत्तं परचरनयनैर्मण्डलं वीक्षणीयम्।
प्रच्छाद्यौ रागरोषौ मृदुपरुषगुणौ योजनीयौ सदैव
आत्मा यत्नेन रक्ष्यो रणशिरसि पुनः सोऽपि नापेक्षणीयः॥"

अर्थात्—सब सों पहिले पहिचानिये धर्ममती कि गती सचिवों की
ानिये। पर चार चखों नित ताकिये मण्डल लोक परम्परा रीतिहि
ानिये॥ रखिये मन दाबि घृणा अरु कोप समै पर नर्म कठोरहु ठानिये।
ज प्राण लुगाइये यत्न सों सो रण काम पड़े तृन तुल्य बिहानिये॥

काव्यप्रकाश में इन के वचनों को प्रमाण रूप से उठाया है उस से ना जान पड़ता है कि ये अलङ्कारज्ञ पण्डित थे।

---

* जेनरल [illegible], [illegible] मित्र इत्यादि [illegible] 'बौद्ध [illegible]' [illegible]

वेतालभट्ट ।

संस्कृत में 'वेतालपञ्चविंशति' और 'नीतिप्रदीप' ये दो पुस्त[illegible]
बनाई हैं। वेतालपच्चीसी में विक्रमादित्य की अद्भुत २ कहानियां हैं। न
प्रदीप के आरम्भ में यह श्लोक है—

"रत्नाकरः किं कुरुते स्वरत्नैर्विन्ध्याचलः किं करिभिः करोति।
श्रीखण्डखण्डैर्मलयाचलः किं परोपकाराय सतां विभूतिः॥"

अर्थात्-"जलधि कहा निज रत्नन सों करै [illegible]
मलय चन्दन खण्डनि कहा करै सुजन श्री बढ़ती पर हेतु ही

घटकर्पर ।

इन ने संस्कृत में अपने नाम से प्रसिद्ध 'घटकर्पर' काव्य [illegible]
उस में वर्षा ऋतु के वर्णन के बाईस श्लोक हैं। प्रत्येक श्लोक
चरणों में यमक (तुक) मिलाया है। उस का प्रथम श्लोक यह है—

निचितं समुपेत्य * नीरदैः प्रियहीनाहृदयावनीरदैः।
सलिलैर्निहितं रजः क्षितौ रविचन्द्रावपि नोपलक्षितौ॥

अर्थात्—घन घमण्डनभमण्डलमण्डे। विरहिणि हृदय धरातलखण्डे॥
सलिल कलिल(मलिन)करिरजसमथाना। रवि शशि बिम्बहु नहिं दरसा[illegible]

इन की बनाई 'नीतिसार' नाम एक और भी पुस्तक है जिस
प्रथम श्लोक यह है—

गिरौ कलापी गगने पयोदा लक्षान्तरेऽर्कश्च जलेषु पद्माः।
इन्दुर्द्विलक्षं कुमुदस्य बन्धुर्यो यस्य मित्रं नहि तस्य दूरम्॥

[अ]र्थात्—धाराधर नभमण्डल गाजा। शिखी धराधर शिखर विराजा॥
लाख कोश अन्तर पर तरणी। सरसि सरसिरुह सोहत घरणी॥
दुइलख कोश दूर वह चंदा। सरसावत सर कुमुद अनन्दा॥
जाकर जो जग सत्य सनेही। दूर बसेहु प्रिय लागत तेही॥

कालिदास ।

यद्यपि नवरत्नों में से प्रत्येक जन काव्यकला में निष्णात थे तो
[illegible]। [illegible]कर्तृत्व की कीर्ति इन्हीं के हाथ लगी है। इन के निर्मित काव्यों
[illegible]—ऋतुसंहार, शृङ्गारतिलक, प्रश्नोत्तरमाला, मेघदूत, नलोद[य]

१ इसका [illegible]

मनुवादक [illegible]

रघुवंश, कुमारसम्भव, शाकुन्तल, विक्रमोर्वशी, मालविकाग्निमित्र, महापद्य, शृङ्गार रसाष्टक और राक्षस *। छन्द विषयक श्रुतबोध और ज्योतिष विषयक रात्रिनत्यमान निरूपण भी इन के बनाये हैं।

ऐसी दन्तकथा है कि सरस्वती के वरदान से कालिदास विद्वान् हुए। इन की स्त्री का नाम रत्नावती † था। यह स्त्री सब विद्याओं में बड़ी विदुषी थी। जब ये विद्वान् हो के घर लौटे तो पत्नी के प्रति अपनी विद्वत्ता प्रकाश करने के भाव से संस्कृत में यह वाक्य बोले। "अस्ति-कश्चिद्वाग्विशेषः"। अर्थात् ऐसा भी कोई शास्त्रवचन है जिसे मैं ने म जानता हो ? उसे सुनकर उन की स्त्री ने कहा कि संस्कृत के इस वाक्य ही के केवल बोल देने से पण्डितमण्डली में गिनती नहीं होती। यदि अस्ति कश्चित् और वाग्-विशेषः इन चार वाक्यखण्डों में से एक २ को ले के अलग२ तीन काव्य आप बना सकें तो मैं मानूंगी कि आप 'महाकवि' हैं। यह सुनते ही कालिदास ने उसी क्षण अलग २ चार काव्यों की रचना में लगा लगा दिया।

यथा कुमारसम्भव के आरम्भ में "अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा" इत्यादि कह के 'अस्ति' पद को डाला है।

मेघदूत के आदि में "कश्चित्कान्ता विरहगुरुणा" इत्यादि कह के 'कश्चित्' पद का विन्यास किया।

रघुवंश का मङ्गलाचरण "वागार्थाविव संपृक्तौ" इत्यादि श्लोक रचा। उस के शीर्ष में 'वाक्' शब्द आया है। 'विशेषः' इस पद को भी आरम्भ कर के कोई काव्य रचा होगा।

वराह।

ये ज्योतिष विद्या में बड़े धुरन्धर विद्वान् थे। कुछ लोग अनुमान करते हैं कि 'सूर्यसिद्धान्त' नाम जो भूगोल और खगोल विषयक ग्रन्थ है वह इन्हीं का संगृहीत है। कोई कोई लोग इन्हीं की पदवी भास्करा-

* जनश्रुति है कि 'राक्षसकाव्य' भी कालिदासजी का रचित है पर किसी किसी पुरानी पोथी में उस के रचयिता का नाम 'कवीश्वर' ऐसा लिखा मिलता है। 'सेतुबन्ध' नाम भी एक काव्य है। उस के रचयिता का भी नाम सुनते हैं कि कालिदास था पर निश्चय नहीं होता कि वे यही थे अथवा राजा भोज के सभासद कालिदास थे। [The Indian Antiquary.]

† कोई २ कहते हैं कि उस विदुषी का नाम 'विद्योत्तमा' और उस के पिता का नाम 'शारदानन्द' था।

चार्य बतलाते हैं पर यह बात सर्वसम्मत नहीं है। बहुत से ऐसा मान करते हैं * कि भास्कराचार्य आज से सात सौ वर्ष पहिले थे।

मिहिर।

कहनावत है कि मिहिर वराह के जामाता थे। वराह की शास्त्र में बड़ी पण्डिता खनानाम्नी जो कन्या थी मिहिर का विवाह हुआ था। यद्यपि कितने लोग वराह और मिहिर ये एक जन के नाम समझते हैं पर वह उन की समझ निर्मूल है ऐसा हम कह सकते क्योंकि मिहिर एक भिन्न जन है। इस बात में प्रमाण हैं।

वररुचि +।

वररुचि एक प्रसिद्ध कोषकार हैं। 'नीतिरत्न' नाम एक छोटी पुस्तक इन की बनाई है। उस का प्रथम श्लोक यह है—

"चतुर्मुख मुखाम्भोजश्रृङ्गाटक विहारिणीम्।
नित्यप्रगल्भवाचालामुपतिष्ठे सरस्वतीम् ॥"

अर्थात् ब्रह्मा के चारो मुख कमलों के संयोग रूपी चौहट्टे पर करनेहारी नित्य उद्दण्ड बातें बोलनेहारी सरस्वती देवी की स्तुति करता हूं।

'पत्रकौमुदी' भी इन्ही महाकवि की रचित है।

कोई २ कहते हैं कि वररुचि ने विद्यासुन्दर का उपाख्यान रचा है।

* डाक्टर कर्ण (कारन) और भाऊदाजी निरूपण करते हैं कि वराह और मिहिर ये दोनों नाम एकही के हैं। वराह मिहिर ने वृहत्संहिता नाम एक पुस्तक रचना की डाक्टर कर्ण ने उस का अनुवाद किया है। भाऊदाजी समझते हैं कि ये वराह मिहिर अव[न्ती] में रहते थे। कर्ण और भाऊदाजी दोनों इस बात में सम्मत हैं कि ये ख्रीष्टीय छठवीं शता[ब्दी] में सदेह थे। इन्हों ने 'पञ्चसिद्धांत' नाम एक ग्रन्थ निर्माण किया है। 'पञ्चसिद्धांत' का हेतु यह है कि 'ब्राह्मसिद्धांत' जिसे कि 'पैतामहसिद्धांत' भी कहते ... 'जिसे 'सौरसिद्धांत' भी कहते हैं 'विशिष्टसिद्धांत' 'रोमकसिद्धांत' ... ।' इन पांचों सिद्धांत ग्रन्थों का आशय ले के यह ग्रन्थ लिखा गया ... लिखते हैं कि ख्रीष्टीय ५८० संवत् में वराह मिहिर का देहांत हुआ।

+ ... का दूसरा नाम पुनर्वसु है परन्तु वररुचि यही नाम बहुत प्रसिद्ध है।
वररुचि ...

इस की रचना के बहुत पीछे उस का आधार ले नवद्वीप के राजा कृष्ण-चन्द्र राय के सभासद् भारतचन्द्र राय ने गौड़ भाषा में पद्यबद्ध दूसरा विद्यासुन्दर बनाया*। यह बात सुनते ही एकाएकी मन में नहीं समाती पर "नहामूला प्रसिद्धिः" इस न्यायानुसार निपट निर्मूलक न होगी।

मातृगुप्त।

ये विक्रमादित्य के समय में हुए हैं। यद्यपि सुनने में नहीं आता कि इन का बनाया कोई प्रसिद्ध काव्य है तथापि राजा विक्रमादित्य ने इन की कविता शक्ति ही के गुण से इन्हें कश्मीर के राजसिंहासन पर बैठलाया। यह बात राजतरङ्गिणी आदि पुराने इतिहास के ग्रन्थों के पढ़ने से जानी जाती है। उस का विवरण इस प्रकार से है कि मातृगुप्त अनेक गुणों से भूषित रह कर के भी दरिद्रता के कारण फटे कपड़े पहिने जर्जर शरीर हो के अपना घरबार छोड़ विक्रमादित्य के यहां आये और अत्यन्त गुणग्राही जान उन का आश्रय ग्रहण करना चाहा। उसी आशा में ये बहुत समय लौं विक्रमादित्य ही की सेवा में लगे रहे तौ भी अभाग्यवश इन की मनकामना पूरी होने का अवसर न आया। दैवात्

---

* श्री कवि वल्लभकृत 'कालिकामङ्गलविद्यासुन्दर' नाम एक पुरानी पोथी गौड़-भाषा में थी। कलकत्ते के रहवैये राजा नवकृष्ण बहादुर के किसी सभासद् ने उसे संशोधन कर के प्रकाशित किया और कहा है कि इस विद्यासुन्दर की अपेक्षा भरतचन्द्र कृत विद्या-सुन्दर बहुत आधुनिक है। उस से पहिले 'कालिकामङ्गलविद्यासुन्दर' रचा गया।

वसु वसु विधिमुख निशाकर शाके। श्री कवि वल्लभ विप्र बनाके॥
कालिकमङ्गल गान सुनायो। रामचन्द्र तिहि प्रकट करायो॥
पुस्तक ठौर ठौर लिप लोपे। शोधि कियउं तिहि बहुरि अतोपे॥
कालिकामङ्गल विद्यासुन्दर। श्री कवि वल्लभ कीन्ह प्रथमतर॥
कृष्णराम निमतापुरवासी। विद्यासुन्दर अपर प्रकासी॥
तासु जहां तहं प्रचुर प्रचारा। रामप्रसाद रचित न उदारा॥
भारतचन्द्र अन्नदामङ्गल। शोध रचेउ पाछे प्रमङ्गल॥

अन्नदामङ्गल की समाप्ति में भारतचन्द्र ने लिखा है—

शाके षोरश सौ चौहत्तर। भारत रच्यो अन्नदामङ्गल॥

अतः इस से ज्ञात होता है कि कालिकामङ्गल की रचना से ८६ वर्ष पीछे अन्नदामंगल बना है।

एक दिन जाड़े की आधी रात में महाराज विक्रमादित्य की नींद खुल और उन ने देखा कि घर में सब दीपक बुझने चाहते हैं। उन के उस., फाने के लिये परिचारक को बुलाया पर उस बेला सब गाढ़ी नींद में सो रहे थे। कोई नहीं सनका। केवल मातृगुप्त जागते थे क्योंकि वे कंगलेपन के दुःख से बिनचैन थे। ये शीघ्र महाराज के पास दौड़ आये। उन्हें चीन्ह महाराज ने पूछा। क्या कारण कि तुम इतनी रात लौं जागते रहे। इस प्रश्न को सुनते ही तुरन्त इन ने श्लोकबद्ध उत्तर दिया।

"शीतेनोद्धुषितस्य माससमनिशं चिन्तार्णवे मज्जतः
शान्ताग्नि स्फुटिताधरस्य धमतः क्षुत्क्षामकण्ठस्य मे।
निद्रा क्वाप्यवमानितेव दयिता सन्त्यज्य दूरं गता
सत्पात्रे प्रतिपादितेव वसुधा न क्षीयते शर्वरी॥"

अर्थात्—*मास व्यतीत भयो जड़काले को नित सचिन्त क्षुधातुर कांपौं*
बूझत आगि सुफूंकत फूंकत ओठनि पीर कहां लगि नांपौं
प्यारि कुंहांइ गई इव नींद न आवत नेर कहा दग ढांपौं
सद्गुण पात्र समर्पित भूइव बाढ़ बढ़ोत्तर रैनहि थापौं

गुणज्ञ महाराज विक्रमादित्य इन की ऐसी अद्भुत कवितासक्ति औ घटकबाई देख अपने मन में बहुत प्रसन्न हुए और आज्ञा दी कि अपने डेरे चले जाओ। पर उस समय कुछ पारितोषक देने के विषय में बात चीत न की। पीछे उन ने एक दिन मातृगुप्त को बुला भेजा और अपने हाथ की लिखी एक चिट्ठी थंभा के कहा कि कश्मीर में जाओ। मातृगुप्त कश्मीर में गये और वहां विक्रमादित्य के नियुक्त राजकाजियों के हाथ में महाराज की चिट्ठी दी। राजकाजियों ने उस पत्र को पढ़ा और महाराज का भाव बूझ लिया। सो कश्मीर के राज शून्य सिंहासन पर मातृगुप्त को बड़े धूमधाम से बिठला के राज्याभिषेक किया। मातृगुप्त महाराज विक्रमादित्य की ऐसी अनुपम गुणज्ञता पर आश्चर्यित हो न्यौछावर हो गया। उस के अभिनन्दन में यह श्लोक लिख महाराज के पास

"नाकारमुद्वहसि नैव विकत्थसे त्वं
दित्सां न सूचयसि मुञ्चसि सत्फलानि।
निःशब्द वर्षण मिवाम्बुधरस्य राजन्
संलक्ष्यते फलत एव तव प्रसादः॥"

अर्थात्—चेष्टाहु ना बुझ परै न विशेष भाषौ
दानाभिलाष लखय बिनु दान देते।
भूप प्रसाद अपनो फल तें जताओ

जान पड़ता है कि विक्रमादित्य के देहान्त अनन्तर वासवदत्ता क
है * क्योंकि उस में ग्रन्थकार ने विक्रमादित्य का परलोक हो जाने
यों आह भरी है ।

सा रसवत्ता विहता नवका विलसन्ति चरति नो कङ्कः ।
सरसीव कीर्तिशेषं गतवति भुवि विक्रमादित्ये ॥ †

अर्थात् पृथ्वी से विक्रमादित्य राजा के उठ जाने से अब रस क
नहीं रह गया । नये २ ढेलनिकनिंये बन रहे हैं । कौन किस पर अत्य
चार नहीं कर रहा है । विक्रमादित्य के बिना संसार सूखता सरोव
सा हो रहा है । निर्मल जल न रह जाने से सारस बगुले और कङ्क
नहीं रहे । प्रबल जन्तु जिस दुर्बल जन्तु को पाता है वह उसी को खा
अपना पेट भरता है ।

वृद्धभोजराज ।

जान पड़ता है कि विक्रमादित्य, भारतवर्षीय सूर्य की नाईं चमक क
जब अस्ताचल को पहुंचे तब भोजराज चन्द्र की नाईं उदय हुए क्यों
भोजप्रबन्धादि पुस्तकों के और कालिदास विरचित महापद्य के श्लोक
के पढ़ने से ज्ञात होता है कि विक्रमादित्य के सभा पण्डितों में से क
एक धीरे २ भोजराज की सभा में उपस्थित हुए थे । बल्लाल मिश्र वि
चित भोजप्रबन्ध में भोज राजा के सभासद् इन पण्डितों के नाम मिल
हैं ; वररुचि, सुबन्धु, बाण, मयूर, रामदेव, हरिवंश, शङ्कर, कलि
कर्पूर, कविराज, विनायक, मदन, विद्याविनोद, कोकिल, तारेन्द्र अथ
नरेन्द्र § । सब के पीछे कालिदास के भी प्रवेश का वर्णन है । कालिदा

---

* वासवदत्ता के टीकाकार नरसिंह वैद्य ने लिखा है कि:—

" कविरयं विक्रमादित्यसभ्यः । तस्मिन् राज्ञि लोकान्तरं प्राप्ते एतं
बन्धं कृतवान् "

अर्थात् सुबन्धु कवि विक्रमादित्य के सभासद थे उस राजा के देहान्त अनन्तर सुबन्धु
वासवदत्ता बनाई ।

† देखो वासवदत्ता के प्रारम्भ में । शार्ङ्गधरपद्धति के श्लोक में और २ कवियों के भी
मिलते हैं ।

§ इन में से बाण, मयूर और कविराज जिन का वर्णन आगे चल के लिखा ज
इन भोजराज के सभासद रहे हों सो सर्वथा असम्भव है । हां इन नामों के और २ प
रहे हों सो संभव है ।

महापद्य नामक छोटी सी पुस्तक के उपोद्घात में उन ने अपने प्रवेश वृत्तान्त यों लिखा है :—

" अस्थिवद्दधिवच्चैव शङ्खवद्बकवत्तथा ।
राजंस्तव यशो भाति पुनः संन्यासिदण्डवत् ॥
कालिदास इमं श्लोकं स्वकवित्वस्य गोपकम् ।
लिखित्वा प्रददौ पत्रं कवये शंकराय वै ॥
पठित्वा शङ्करः श्लोकं प्रहसन् कौतुकाय तत् ।
पत्रं करे समादाय सा दरत्वरया तदा ॥
कालिदासेन सहितो भो राज सभां ययौ ।
अथ दृष्ट्वा स राजानं तापं प्रजगाद ह ॥ "

र्थात्—हाड़ दही बक शंख पुनि, जरठि दृगिड कर दण्ड ।
इन्ह सम तव अवदात यश, लसत ताहि धरयण्ड ॥

ज कवितार्हि चहत दुराया । कालिदास यह पद्य बनाया ॥
हैं इक पाती महं लिख लीन्हा । जाकर कवि शङ्कर कर दीन्हा ॥
दे पाती शङ्कर मुसुक्याए । कालिदास सङ्ग हरषि सिधाए ॥
रेज सभा भट कौतुक हेतू । जानि रख्यो तहं नृपकुलकेतू ॥
ालिदास जो पद्य बनाया । पढ़ि तिहि आशीर्वाद सुनाया ॥
रे वृद्ध भोजराज कर्णाट देश के भी राजा थे क्योंकि महापद्य के
तम श्लोक में कालिदास ने लिखा है :—

भागाः प्रत्युपकारकातरधिया वैमुख्यमाकर्णय
श्रीकर्णाटवसुन्धराधिप सुधासिक्तानि सूक्तानि मे ।
वर्ण्यन्ते कति नाम मार्णवनदी भूगोल विन्ध्याटवी
झंझामारुत चन्द्रमः प्रभृतयस्तेभ्यः किमार्त्तं मया ॥

ात्—सिन्धुसरित भूगोल विन्ध्यवन । आधि पवन चन्द्रादिक वर्णन ।
कविन कियौं तिन सो फल पायउँ । कर्णाटकपति तोहि ढिग आयउँ ।
सुन्दर गिरा सुधारस सानी । सुनिय न गुनिय विदार गलानी ॥
भोजराज ने चम्पू रामायण बनाया है ।

इतिहासज्ञ पण्डित लोग कहते हैं कि विक्रमादित्य के पचास वर्ष पीछे
ाण्देश में अति प्रसिद्ध चन्द्रवंशी राजाओं का राज्य कर्णाट और
क तलक लगता था । ये चन्द्रवंशी राजा लोग पंवार (प्रमर) राजपूत
इस से सिद्ध होता है कि ये विक्रमादित्य के सगोत्री थे । उन
त नदी से ले [illegible] घाट पर्यन्त तक कर्णाटकराज्य फैला

वर्ष और दश दिन जीकर अन्त में अग्नि प्रवेश किया था अपने का उल्लेख ग्रन्थकार अपने ग्रन्थ में करे भला यह कैसे घटित हो है। इस से सहज में बूझ सकते हैं कि मृच्छकटिक राजा बनाया नहीं है। यदि मृच्छकटिक को तो शूद्रक ने मरणानन्तर प्रस्तावना किसी दूसरे ने रच के उस में डाली। करें तो प्रस्तावना तथा नाटक की रचना परस्पर इतना भेद वह दो न्यारे नरों की बनावट हो यह सिद्धान्त हृदयङ्गम नहीं और कहीं ऐसी परिपाटी भी नहीं है कि ग्रन्थ तो कोई रचे दूसरा लिखे। संस्कृत नाटक की प्रस्तावना तो नाटक का जाती है। उसे दूसरा कोई जोड़ देवे यह बात किसी प्रकार से के योग्य नहीं है *।

भारवि।

श्रीयुत ईश्वरचन्द्रविद्यासागर महाशय ने लिखा है † [illegible] के कवि भारवि, कालिदास के अनन्तर और माघ श्रीहर्ष आदि के

अर्थात्

पूर्णचन्द्र मुख सुन्दर काया। कवि गजेन्द्र गामी [illegible]
भयो चकोर नयन मन पीना। शूद्रक अश्वमेध मख
नाम कमाइ उछाह बधावा। करि सुत कहँ नृपपद [illegible]
दश दिन अधिक वर्ष शतजी के। शियतहिं पैठ

* देखो श्रीयुत ईश्वरचन्द्र विद्यासागर रचित संस्कृत भाषा और संस्कृत [illegible] प्रस्ताव का ८६ पृष्ठ।

† संस्कृत भाषा और संस्कृत साहित्य विषयक प्रस्ताव [illegible] पृष्ठ में लिखा है, [illegible] किरातार्जुनीय के [illegible] दोनों काव्यों की रचना [illegible] किरातार्जुनीय है। [illegible] कोई आधार नहीं है, परन्तु

"[illegible] कविकालिदासः"

और

"[illegible] भारविः"

[illegible]

टीकाकार भरतमल्लिक भट्टिकाव्य के रचयिता का नाम 'भर्तृहरि' कहते हैं पर आचरज होता है कि वे अपने वचन के समर्थन में कुछ प्रमाणोपन्यास नहीं करते हैं। उन के कथन का खण्डन तो भट्टि काव्य की समाप्ति के श्लोक से ही हो जाता है क्योंकि कवि ने कहा है कि मैं वलभीपति नरेन्द्र राजा की राजधानी में रह कर यह काव्य बनाया है * । यह उक्ति भर्तृहरि के पक्ष में संलग्न नहीं हो सकती क्योंकि भर्तृहरि आप राजा थे। वे काहे को दूसरे की राजधानी में टिक के काव्य निर्माण करेंगे।

यों भरतमल्लिक की कहतूति ऊटपटांग ठहरी और भट्टि काव्य के कर्त्ता कौन किस देश और काल में था और कब कहां काव्य की रचना की इन बातों की खोज करना चाहिये। जयमङ्गल की टीका से यह तो विदित हो चुका कि काव्यकर्त्ता का नाम भट्ट था पर उस में कवि के समय की कुछ चर्चा नहीं है। बंगाली पोथी की भक्तमाल में श्री श्रीधर स्वामी के वर्णन के प्रकरण में जो लिखा है। उस का उल्था यह है।

जय श्रीधरस्वामी जग पावन। सिखइ भागवत भवदुखदावन।
इनकी विरति कथा पहिले की। कहहुं सुनहु श्रुति सुखद विवेकी॥
श्रीयुत परमानन्दपुरी की। कृपा भई नृसिंह शशी की।
जागी विमल ज्योति जियमाहीं। भा विराग गृह मन लग नाहीं॥
पूर्णगर्भतिय सदन अकेली। ठानेउ विपिन गमन पग्हेली।
महाभाग्य घर बुध गम्भीरा। तिहि अवसर प्रसूति कृतपीरा॥
पत्नी जनि शिशु स्वर्ग सिधारी। भयउ सचिन्त कुदाँव निहारी।
जाउं विपिन को शिशु संगार्ले। घरमहं रहन हृदय नहिं भाखें॥

---

* काव्यमिदं विहितं मया वलभ्यां
श्रीधर सूनु नरेन्द्र पालितायाम्।
कीर्तिरतो भवतान्नृपस्य तस्य
क्षेमकरः क्षितिपो यतः प्रजानाम्॥
(भट्टि २२ सर्ग ३५ श्लोक)

राजधानि वलभीपुर माहीं।
राज करत श्रीधरसुत पाहीं॥
प्रजाहितोद्यत भूपति पायो।
तिहि यश लगि यह काव्य बनायो॥

रामीचितदुचितसाधु लखभुइयां। ज्ञानी ते अएहा बिसतुइयां।
गिरेउ फुटेउ निसरेउ इकबच्छा। खायउ वह संमुख धरि मच्छा॥
निरखि सुसाधु गुनेउ मनमाहीं। जो इहि रख्यो सु गे कहुं नाहीं।
इहि शिशुह कहं ये रखवारे। इमि चित चेति विपिन पगुधारे॥
रघुशिशु लखिअनाथप्रतिपाला। पुरवासिन्ह वह बुद्धि विशाला।
समय पाइ बुध होइ बखाना। भट्टिकाव्य रघुवर गुणगाना॥

ऊपर उक्त वर्णन के सहारे से जाना जाता है कि ये कवि शङ्कराचार्य के पीछे हुए क्योंकि श्रीधरस्वामी ने जिन्हें इन कवि का पिता कह के निर्देश किया है वे भी शङ्कराचार्य के पीछे ही हुए हैं। इस से इन कवि का जन्म ७०० शकाब्द के पीछे हुआ। ऐसा समझ में आता है। पर कवि ने आप जो कुछ लिखा है, उस पर ध्यान देने से जाना जाता है कि ये शङ्कराचार्य से पहिले थे। उन ने लिखा है कि मैं ने वलभीपति नरेन्द्र राजा की राजधानी में बसकर यह ग्रन्थ रचा। इतिहास पढ़ने से ज्ञात होता है कि उदयपुर राज्य की पुरानी राजधानी वलभीपुर था। वहां के राजा लोग अपने को श्रीरामचन्द्रजी के ज्येष्ठ पुत्र लव के सन्तान बतलाते हैं। अतः असम्भव नहीं है कि इस काव्य का कवि ने उक्त राजधानी में रह के वहां के राजाओं के मूलपुरुष श्रीरामचन्द्रजी के चरित्र का वर्णन किया हो। इतिहास पढ़ने से और भी ज्ञात होता है कि इस वलभीपुर का ध्वंस ४४६ शकाब्द अर्थात् सन् ५२४ ईस्वी में नौशेरवां बादशाह के बेटे नमिजाद ने किया। इसलिये इस काव्य के कवि को ४०० शकाब्द से पूर्ववर्ती मानना पड़ता है। परन्तु उक्त राजधानी में पूर्व में नरेन्द्र नामक कोई राजा हुआ है कि नहीं जब तक यह निर्णय न हो ले तब तक इस विषय की कुछ भी मीमांसा (टान) नहीं हो सकती है। अब तक जो ऐड़ बायल की चिट्ठी अलग २ पड़ी है, उन से यही निरूपित होता है कि ये कवि शंकराचार्य से भी पहिले हुए। इस के विपरीत जो भट्टि को मल्लनाथ में श्रीधर का पुत्र लिखा है; उस का कारण अनुमान होता है कि भट्टिकाव्य की समाप्ति के श्लोक में 'श्रीधर सूनु' पद जो पड़ आया है, उस का अन्वय और तात्पर्य बिना बूझे [illegible] अकस्मात ग्रन्थकर्त्ता ने केवल कान से सुनकर भट्टिका[illegible] श्रीधर का पुत्र मान लिया है।

विष्णुशर्मा ।

कितने एक लोग समझते हैं कि पञ्चतन्त्र और हितोपदेश इन्हीं का बनाया है। पर इस बात का कोई पक्का प्रमाण नहीं मिलता। ये दोनों ग्रन्थ किसी एक ही के बनाये हों। इस बात को बुद्धि नहीं मानती। किञ्च जब हितोपदेश के रचयिता ने आप लिखा है कि मैंने पंचतन्त्र तथा और २ ग्रन्थों का भी सारांश चुन कर इस पुस्तक के बनाने में हाथ लगाया * तब हितोपदेश और पंचतंत्र इन दोनों पुस्तकों का एक ही ग्रन्थकार हो, इस बात को मन कभी नहीं पतियासकता। पंचतन्त्र औ हितोपदेश दोनों पुस्तकों में विष्णु शर्मा वक्ता और राज कुमार श्रोता लिखे हैं। इसी से लोग धोखा खाते हैं कि विष्णुशर्मा ही दोनों पुस्तकों का बनानेहारा है। लल्लू लाल तो हितोपदेश को नारायण पण्डित ही का बनाया बतलाते हैं †।

पंचतन्त्र ग्रन्थकार बड़े प्राचीनों में हैं §। इन का रचित पंचतन्त्र और २ देशों में भी बहुत काल से प्रचलित है। अबुलफज़ल मशहूर मुसन्निफ है। उस ने फ़ारसी ज़बान में पंचतन्त्र का तर्जुमा कर के दीबाचा में लिखा है कि बिदपाई नामे ब्राह्मण ने किसी राजा के दरस में यह किताब बयान की। बूझ पड़ता है कि बिदपाई यह शब्द ब्राह्मण की किसी पदवी के शब्द से बिगड़ा होगा। हो न हो यह बाजपेयी का अपभ्रंश है। अबुलमान नामे शख्स ने जो फारसी में मुसन्निफ़ था कलीला

---

* पञ्चतन्त्रात्तथान्यस्माद् ग्रन्थादाकृष्य लिख्यते।

अर्थात् पञ्चतन्त्र तथा अन्य ग्रन्थ से भी संकलन कर के यह पुस्तक बनाता हूं।

† "काहू समै श्रीनारायण पण्डित ने नीतिशास्त्रनि तें कथानि को कहत करि संस्कृत में एक ग्रन्थ बनाय वाको नाम हितोपदेश धर्यो ॥ (राजनीति)

§ पञ्चतन्त्र में याज्ञवल्क्यस्मृति के वचन उद्धृत मिलते हैं अध्यापक विल्सन महाशय बतलाते हैं कि याज्ञवल्क्य स्मृति में 'नाणक' यह एक प्रकार के सिक्के का नाम पाया जाता है। इस सिक्के का चलना ख्रीष्टीय द्वितीय शताब्दी से हुआ है। अत याज्ञवल्क्यस्मृति ख्रीष्टीय द्वितीय शताब्दी से पुरानी नहीं जान पड़ती। यदि यह अनुमान सत्य है तो पञ्चतन्त्र की रचना ख्रीष्टीय तृतीय शताब्दी के परे और चतुर्थ शताब्दीय से पूर्व हुई ऐसा प्रतीत होता है। हम ऐसे अनुमान का अनुमोदन नहीं करते हैं क्योंकि ऐसे हठों से तो पुराण शास्त्र आदि ग्रन्थों को नवीन बतला सकेंगे।

दमना * का तर्जुमा किया। उस के दीबाचे के मुताबिक अबुलफज़ल
व हुसेन वाफ़िज़ ने लिखा है कि फारस के बादशाह नौशेरवां ने (जो
कि शके ४१२ में बादशाहत करता था) एक आलिम हकीम को कलील
दमना तलाश कर ले आने वास्ते हिन्दोस्तान में रवाना किया। वो
हकीम हिन्दुस्तान से उस किताब को हासिल कर अपने मुलक में वापिस
आया। बादहू शाह के हुक्म से कदीम फारसी ज़बान पहलवी में उस का
तर्जुमा हुआ। बाद उस के अरब के शाहनशाह मन्सूर की इजाज़त से
अबुलजाफर ने पहलवी से अरबी में उस का खुलासा लिखा। उसपर से
शाहज़ादा नासिरुद्दीन अहमद के फ़र्माने से अबुलहुसेन ने फ़ारसी में
इन्तिखाब किया। उसी को रुदकीनामे शायर ने नज़म में इन्शा किया।
बाद हू अबुलमुज़फ़्फ़र बहरामशाह के हुक्म से अबुलमाल ने दूसरी
दफ़ा अरबी ज़ुबान में इस की नसर तयार किया। उसी ज़माने से
अबुलमाल की लिखी यह कलीला दमना किताब शुहरत पाने लगी। उस
के चन्द रोज़ बाद वाफ़िज़ और अबुलफज़ल ने इस की फारसी ज़ुबान
में कैफ़ियत लिखी। इस के बाद मौलाना हुसेन ने फारसी में उसी की
नकल से "अनुवारसुहेली" नामें किताब तसनीफ़ की।

हितोपदेश में राजा शूद्रक और उस के रचित मृच्छकटिक नामक
नाटक के मुख्य पात्र चारुदत्त का नाम मिलता है और एक ठौर भारवि
रचित "सहसा विदधीत न क्रियाम्" इत्यादि प्रतीकवाला श्लोक भी
उठाया है। इन दोनों पकड़ से विष्णु शर्म्मा के समय निरूपण में बुद्धि
दौड़ाई जा सकती है।

विशाखदेव।

ये एक राजकुमार थे। इन का दूसरा नाम विशाखदत्त है। बहुतेरे
जानते हैं कि "मुद्राराक्षस" नामक संस्कृत नाटक इन्हीं का बनाया है।

---

* ये दोनों शब्द संस्कृत के करटक और दमनक शब्दों के फारसी में [illegible]

रहस्य सन्दर्भ के सम्पादक महाशय ने इस कथा की समाप्ति ...
है कि यथार्थ में विल्हण ही 'चोर' कवि है। नवद्वीप के महाराज ...
चन्द्र राय के सभासद् पण्डित भारतचन्द्र, काञ्चीपुर के निवासी ...
कुमार सुन्दर को चोर कवि और विद्यानाम्नी राजकुमारी के साथ उन
का गान्धर्व विवाह हुआ यह जो कहते हैं सो बनावटी बात है। सम्पादक
महाशय के इस कथन को हम सर्वथा नहीं मान सकते क्योंकि भारत
चन्द्र ही ने विद्यासुन्दर की कहानी पहिले पहिल रची हो यह कोई बात
नहीं है। वररुचि ने संस्कृत में यह कहानी पहिले रची थी; ऐसा सुनते हैं।
वंग भाषा में भी यह कहानी भारतचन्द्र के पहिले दूसरों ने बनाई थी*
फिर जब कि चोरपञ्चाशिका के अति प्रचलित श्लोकों में से एक श्लोक
के अन्त में—

"विद्यां प्रमाद गुणितामिवचिन्तयामि" अर्थात् भूल से भुलवा दी गई
विद्या की नाईं विद्या नाम्नी कामिनी के सोच में मैं पड़ा हूं॥

यों विद्या का नाम लिखा मिलता है तो और क्या सन्देह करें। चोर
पंचाशिका के श्लोक श्लेष से एक पक्ष में महाविद्या की स्तुति में और
अपर पक्ष में विद्या नाम राजकुमारी के रूपगुण आदिके वर्णन में सब
घटित होते हैं। इन श्लोकों पर दोनों अर्थ पर घटानेवाली टीका भी बन
गई है। उस के पढ़ने से मन में बैठता है कि कविही ने श्लेषात्मक
कविता रची है क्योंकि जैसा शृंगाररस के अमरुशतक का अर्थ खींच
खांच के शान्तिरस पर घटाया है वैसी कष्ट कल्पना से योजना उसकी
टीका में नहीं है।

रहने देते हैं क्योंकि इस विषय में और छान बीन वा उधेड़ बुन करना
हमारा काम नहीं है। चोर कवि किस समय में थे। हम इतनाही जत
लाना चाहते हैं। सम्पादक महाशय ने लिखा है कि चोर कवि ८०० वर्ष
पूर्व में भारतवर्ष के प्रधान २ कवियों में गिने जाते थे पर हम और भी
अधिक ध्यान के देख पाते हैं कि १२५० वर्ष पूर्व भी उन का नाम प्रसिद्ध
था क्योंकि बाणभट्ट रचित श्रीहर्ष चरित में भी चोरकवि का नाम
मिलता है।

* देखो वररुचि के वर्णन में।

शिल्हण।

उसी रहस्यसन्दर्भ नामक पत्र में लिखा है कि बिल्हण और शिल्हण
। दोनों कवि सम सामयिक हैं। इस से हम अनुमान करते हैं कि बिल्हण
से शृंगाररस के वर्णन में तत्पर थे शिल्हण को ठीक उस के विपरीत
सादा शान्त रसमयी कविता की रचना में व्यासंग रहा होगा सम
सामयिक गुणवन्तों में परस्पर लाग डांट की बहुत सम्भावना है। उसी
के शिल्हणकृत शान्तिशतक नाम पुस्तक में बीच २ शृंगार रस का वर्णन
करनेवालों के ऊपर कटाक्ष करने का आभास मिलता है।

यथा—

यदा प्रकृत्यैव जनस्य रागिणो भृशं प्रदीप्तो हृदि मन्मथानलः।
तदा तु भूयः किमनार्थ पण्डितैः कुकाव्य हव्या हुतयो निवेशिता॥

अर्थात्

जीव सहज विषयी जगरागी। धधकत अधिक हृदय मदनागी॥
तिहि पर कुकवि कुकाव्य आहुती। देहि अहह यह महा अजुगुती॥

यह जो श्लोक नीचे लिखा जाता है उसे मम्मट ने काव्य प्रकाश में
उठाया है—

लब्धाः श्रियः सकलकामदुघास्ततः किं
सन्तर्पिताः प्रणयिनो विभवैस्ततः किम्।
न्यस्तं पदं शिरसि विद्विषतां ततः किं
कल्पं स्थितं तनुभृतां तनुभिस्ततः किम्॥

अर्थात्

होत कहा मनसा परिपूरन सम्परिपूरन सम्पति पाये।
होत कहा धन धान निधान दै दै मनमान सखानह रिझाये॥
होत कहा पुनि वैरिन्ह के शिर पै पग दै निज छत्र धराये।
होत कहा प्रलयावधि श्वसत गात टिके न विराग पढ़ाये॥

पर यह श्लोक शिल्हण का रचित है या नहीं? तिसका निर्णय नहीं
होता क्योंकि भर्तृहरि रचित वैराग्यशतक में भी इसी ढंग का एक श्लोक
मिलता है।

यथा—

प्राप्ताः श्रियः सकलकामदुघास्ततः किं
न्यस्तं पदं शिरसि विद्विषतां ततः किम्।

गण्डाद्रिभिः प्रलयिभो विजयाश्मनः किं
पतद्भिर्गजाश्मनुभृगन्जगजन्मनः किम् ॥

मानतुंग ।

यह जैन थे। सातवीं शताब्दी उतर जाने पर जैन मत का
धर्म में बहुत फैल गया था। सुनने में आता है कि इन से कुछ छल
बना। तिस के प्रतिफल में राजा ने इन्हें लोहे की निगड़ में डाल
दिया। ये भक्तामर नाम स्तोत्र रचना कर चले और उस से निगड़
छूटे हुए।

मयूरभट्ट ।

ये बाणभट्ट के श्वसुर * और उन के समय में जीते थे। इस से
बाणभट्ट का समय निरूपण करने से इन का भी समय निरूपित
आयगा। कोई २ कहते हैं कि ये उज्जैन के वृद्ध भोजराज की सभा
उपस्थित थे। मयूरभट्ट ने अपनी कन्या के रात्रिविलास के वर्णन में
श्लोक रचा।

उद्धूय बाहु युगमायतदेहवल्ली
प्रातः कुरङ्गनयनाविजहाति जृम्भाम्।
मन्ये ह्रिया रतिरणात् पुरतो निवृत्तं
कामो † धनुः कुटिलतारहितं करोति ॥

अर्थात्

मृग दग भोर जगी रंग राती। भुज पसारि अंगराति जम्हाती
जनु दम्पति रति समर समापत। जानि मदन धनु पनच उतारत
तिस से इन की बेटी ने खीझ कर शाप दिया ‡ कि कोढ़ी हो
उस से ये कोढ़ी हो गये। पीछे सूर्य की स्तुति में 'सूर्य शतक'
सो सूर्य के प्रसाद से उन का कोढ़ मिटा § मयूरभट्ट की ऐसी

---

* कोई २ कहते हैं साले थे। (अनुवादक)

† बंगला में व्रीयम् पाठ है यहां कामो पाठ रक्खा है। अनुवादक

‡ कहनावत प्रसिद्ध है 'कि निरंकुशाः कवयः' अर्थात् कवियों के मुख
होतो।

§ आदित्यादेर्मयूरादीनामनर्थ निवारणम्" इति काव्यप्रकाशः

देख के उन के जमाई बाणभट्ट बहुत सिहाये और उन्हें भी अपनी सिद्धि दिखाने की बहुत साध हुई। सो अपने हाथ से अपने हाथ पांव में कुल्हाड़ी मार अपनी इष्टदेवता दुर्गा की स्तुति में सौ श्लोक बना डाले। दुर्गा के प्रसाद से उन के भी फिर जैसे के तैसे हाथ पांव हो आये। हिन्दू लोगों की ऐसी सिद्धाई देख के बौद्धमतवाले आर्हत लोग बड़े चंपे छिपे। यह देख उन के आचार्य मानतुङ्गपुरी उन के धिरञ्जन के लिये सब के सामने राजा से आज्ञा मांग एक घर भीतर पैठे और अपने शिष्यों से बोले कि उस घर के किवाड़ों को बन्द कर के अड़तालीस सिकड़ी की जञ्जीर से कस दो। जब चेलों ने वैसा किया तब मानतुङ्ग ने भीतर बैठे २ बुद्धदेव की महिमा में 'भक्तमार' स्तोत्र नाम से अड़तालीस श्लोक रचे। इधर ज्यों २ एक २ श्लोक बनता गया उधर त्यों २ लोहे की एक २ सिकड़ी आप ही आप खुलती गई। यों अड़तालीस श्लोक पूरे होने पर अड़तालीसो सिकड़ियां खुल गईं। यह अद्भुत सिद्धि देख बौद्धों ने फिर बुद्धदेव के नाम पर जयजयकार किया।

जिस राजा के साम्हने लोगों को यह सिद्धि दिखलाई गई वह उज्जैन का महाराज वृद्ध भोजराज था। ऐसा लिखा देखने में आता है * न केवल इतना ही किन्तु उस की सभा में बाण, मयूर, कालिदास इत्यादि पांच सौ पण्डित और कवि विद्यमान थे। यह बात भी लिखी है पर यह क्योंकर हो सकता है कि वृद्ध भोजराज के समय में ये सब वर्त्तमान रहे हों क्यों कि इस बात के प्रतिकूल बहुत से प्रमाण दिखलाये जा सकते हैं। सब में प्रबल प्रमाण यह है कि भूपाल राज्य में आज कल एक ताम्रलेख मिला है:

अर्थात् मयूर आदि कवियों के दुःख सूर्यादि की स्तुति रूप कविता बनाने से दूर हुए।

मयूरनामाकविः शतश्लोकेनादित्यं स्तुत्वा कुष्ठान्निस्तीर्ण इति प्रसिद्धिः।
इति टीकाकारोजयरामः।

अर्थात् मयूर नाम कवि ने सूर्यशतक बना के सूर्य की स्तव किया जिस के प्रभाव से उन का कोढ़ छूट गया। ऐसी किम्बदन्ती प्रसिद्ध है।

* सूर्यशतक की 'बालविनोदिनी' नाम टीका में यह कहानी लिखी है। सूर्यशतककी तीन टीका प्रसिद्ध हैं। उन में से एक का नाम 'बालविनोदिनी' है। यह जैराम के [illegible] राम के पड़पोते हरिवंश और दूसरी [illegible] ([illegible]) भट्ट की और तीसरी [illegible] शास्त्री की बनाई है।

तभी उन के माता पिता परलोक सिधारे। बाण के साथियों में मुख्य
तीन जन थे। भद्रनारायण, ईशान और मयूरक। बाण ने एक यूना
माननेवाले को अपने यहां रक्खा था। उस से यूनान की पौराणिक
सुना करते थे। *

कन्नौज का महाराज शीलादित्य प्रसिद्ध पुरुषों में है, वह ५७२ श
अर्थात् ६५० खीष्टाब्द में था। उस के पिता का नाम प्रताप शील और
उपाधि प्रभाकर वर्द्धन थी। इस प्रभाकर वर्द्धन के तीन पुत्र थे। जेठा बेटा
राज्यवर्द्धन और उस से छोटा शीलादित्य था शीलादित्य से छोटा हर्षव-
र्द्धन था। वह ५२२ से ५४७ शक अर्थात् खीष्टाब्द६०० से ६२५ तक राज्य
करता रहा। बाणभट्ट इसी राजा की सभा में नियुक्त थे और उसके चरित्र
के वर्णन में हर्ष चरित नाम एक काव्य बनाया। कादम्बरी नाम प्रसिद्ध
गद्याख्यायिका भी इसी महाकवि की निर्मित है † ॥

बाण विरचित हर्षचरित में कुछ कवियों के नाम काव्य का नाम
श्लोकबद्ध मिलते हैं। उन से कौन २ कवि बाण से भूतपूर्व हैं तिस का
क ठिकाना लगता है। उन श्लोकों को नीचे लिखता हूं।

कवीनामगलद्दर्पो नूनं वासवदत्तया (क)।
शक्त्येव पाण्डुपुत्राणां गतया कर्णगोचरम् ॥
पदबन्धोज्ज्वलोहार एतवर्ण क्रमस्थिति।
भट्टारहरिचन्द्रस्य (ख) गद्यबन्धो नृपायते ॥
अविनाशिनमग्राम्य मकरोत सातवाहनः (ग)।
विशुद्धजातिभिः कोष (क) रत्नैरिव सुभाषितैः ॥
कीर्तिः प्रवरसेनस्य (ख) प्रयाता कुमुदोज्ज्वला।
सागरस्य परं पारं कपिसेनेव सेतुना (क) ॥
सूत्रधार कृतारम्भैर्नाटकै बहुभूमिकैः।

सपताकैयशो लेभे भासो (ख) देवकुलैरिव ॥
निर्गतासु नवाकस्य कालिदासस्य (ख) सूक्तिषु ।
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते ॥
समुद्दीपितकंदर्पा कृतगौरीप्रसाधना ।
हर लीलेव लोकस्य विस्मयाय वृहत्कथा (ख) ॥
आढ्यराज (ख) कृतोत्साहैं हृदयस्थैः स्मृतैरपि ।
जिह्वान्तः कृष्यमाणेव कवित्वेन प्रवर्तते * ॥
(हर्षचरित प्रथम उल्लास ११-१८)

अर्थात्—

वासवदत्ताग्रन्थ लखि, घस्यो कविन को मान ।
कर्ण समीप मनो पहुंचि, पाराडव बल परिमान ॥ १ ॥
विमलहार सम वाक्य धरि, क्रम तें अक्षर साज ।
गद्यभट्ट हरिचन्द को, है कविता सिरताज ॥ २ ॥
कियो सात वाहन सुभग, काव्य अमर की भांति ।
शुद्ध सुभाषित रत्न की, मनहु बटोरी पांति ॥ ३ ॥
प्रवरसेन यश जगमगत, शशि अंजोर अनुहार ।
कपिदल सम जो सेतु चढ़ि, पहुंची सागर पार ॥ ४ ॥
सूत्रधार आरम्भ किय, प्रस्तावना समेतु ।
देववृन्द इव भास की, फहराने जस केतु ॥ ५ ॥
कालिदास मुख तें कढ़ी, कविता मधुर सुभाय ।
मनहु पुहुप की मञ्जरी, जन मन लेत लुभाय ॥ ६ ॥
पारवती परितोष कृत, काम जगावनहार ।
वृहत कथा शिवचरित सम, अद्भुत किय विस्तार ॥ ७ ॥
आढ्यराज के चरित सब, पैठे हृदय मझार ।
खिंचत जीभ तल ते मनहुं, रुचिर काव्य की धार ॥ ८ ॥

जिन कई कवियों का वर्णन प्रस्तुत पुस्तक में नहीं लिखा उन में से प्रवरसेन नाम के दो कवि हैं । दोनों काश्मीर के राजा पहिला (प्रवरसेन) दूसरे (प्रवरसेन) का आजा था ।

---

* कथा सरित्सागर आदि किसी २ पुस्तक में सातवाहन नाम मिलता है । [illegible] ग्रन्थ को हमी शालिवाहन लिखा दीखता है । ये काश्मीरेश हर्षराज के पुत्र थे । आढ्य [illegible] के ग्रन्थ में कहीं २ आढ्यराज ऐसा नाम लिखा मिलता है ।

दूसरे प्रवरसेन ने विक्रमादित्य के पुत्र प्रतापशील को जिस का नामा-
तर शिलादित्य था युद्ध में परास्त किया। देखो कल्हण कृत राजतरंगिणी
: तीसरे तरंग के ३२२ से ३३३ श्लोक तक।

धर्मदास।

इन ने विदग्ध मुखमण्डन के मंगलाचरण में बुद्धदेव की स्तुति की
* उस से सिद्ध होता है कि ये बौद्ध थे क्योंकि यह बात सब को
दित है कि ग्रन्थकार लोग ग्रन्थारम्भ में निज अभीष्टदेव ही का स्मरण
र वन्दन आदि करते हैं। इन के बौद्ध होने से अनुमान होता है कि
शङ्कराचार्य से भी पूर्व मगध राज्य में कहीं रहे होंगे क्योंकि उन दिनों
न्दुस्तान के अन्यत्र की अपेक्षा मगध में बौद्धों की अधिक धूमधाम
। बाणभट्ट कृत हर्षचरित में जितने मत सम्बन्धी नाम लिखे मिलते
उन में बौद्ध अधिक हैं। यथा विन्ध्याचल के ऊपर बसे एक गाँव के
वासियों के मत सम्बन्धी नामों के निर्देश स्थल में हर्षचरित में लिखा
लता है। आर्हत मस्करी, श्वेतपट, पाण्डुर, भिक्षु, भागवत, वर्णी
ब्रह्मचारी), लौकायतिक, जैन, कपिल, काणाद औपनिषद, ईश्वरका-
णी, धर्मशास्त्री पौराणिक, सप्ततन्तु, शाब्द और पांचरात्र †।

राजा श्रीहर्ष।

बाणभट्ट इन्हीं के यहां थे और हर्षचरित में इन्हीं का चरित लिखा।
रत्नावली और नागानन्द ये दो नाटक इन्हीं के बनाये हैं। श्रीयुक्त ईश्वर
न्द्रविद्यासागर आदि विद्वानों ने लिखा है कि कश्मीर के राजा श्रीहर्ष
। इन दोनों नाटकों को बनाया और उस के पोषण में कल्हण कृतराज-
रंगिणी के सातवें तरंग के ६११ श्लोक को उठा के प्रमाण देते हैं। यथा—

"सोऽशेषदेशभाषाज्ञः सर्वभाषासु सत्कविः।
कृत्स्नो विद्यानिधिः प्राप ख्यातिं देशान्तरेष्वपि॥"

---

* सिद्धौषधानि भवदुःखमहापदानां पुण्यात्मनं परमकर्णरसायनानि।
प्रक्षालनैकसलिलानि मनोमलानां सिद्धोदनेः प्रवचनानि चिरं जयन्ति॥

अर्थात्

भवदुखगाद हरन सिद्धौषधि। अमिय निचोरत सुकृति श्रवण मधि॥
अनमनमन छालन जलरुचिर। शुद्ध वचन जयभाजन सुचिर॥

† [illegible]

अर्थात्—सकल देश भाषा सुजान। सकल सवनि कवितानिधान।
एवं चतुर विद्यानिधान। दूर देशहु मा बखान॥

कुशल है कि वे आप मान लेते हैं कि राजतरङ्गिणी में रत्नावली नागानन्द का नाम कहीं नहीं है। यहां टुक सोचना चाहिये कि जिस स जो कवि हुआ जो काव्य बनाया और जिस किसी पुस्तक का प्रचार सो सब प्रसंग घड़े पर राजतरंगिणी में विशद कर के लिखने में कहीं छूटने पाया है तो क्या कारण है कि इन दोनों प्रसिद्ध नाटकों का नाम भी नहीं उस में लिखा मिलता ? इस से यही प्रतीति होती है कि कार राज श्रीहर्ष ने ये दोनों नाटक नहीं बनाये। देखो मम्मट भट्ट कृत का प्रकाश और भोजराज कृत सरस्वती कण्ठाभरण में भी जिन की र मिति ९०० शकाब्द से थोड़े दिन पीछे है इन दोनों नाटकों के नाम मि हैं पर राजतरंगिणी के अनुसार समय का लेखा लगाते हैं तो काश्मी हर्ष १००० शकाब्द स भी पीछे आते हैं। फिर किस युक्ति से कह स हैं कि उक्त दोनों नाटकों को उन ने बनाया *। कोई २ कहते हैं बाण ही ने श्रीहर्षदेव की आज्ञानुसार रत्नावली रची है। और इस के प्रम में बतलाते हैं कि बाणभट्ट रचित हर्ष चरित के पञ्चम उच्छ्वास का 'लिर्या

इर
श
हैं
श्र
कें
व

में आता है कि एक ही ढंग का प्रसंग आ पड़ने से एक कवि के रा श्लोक दूसरे कवि के रचित ग्रन्थ में बहुधा धर दिये गये हैं। दे भर्तृहरिकृत वैराग्य शतक का 'प्राप्ताः श्रियः' आदिक प्रतीक वाला श्लोक के शान्तिशतक के चतुर्थ परिच्छेद में दूसरा श्लोक कर के लि गया है। और महानाटक (हनुमन्नाटक) का ४६ वां 'चूडाचुम्बित क मण्डित' इत्यादि प्रतीक वाला परशुराम के वर्णन का श्लोक भवभूति उत्तररामचरित के चतुर्थ अङ्क में लव के वर्णन में लिखा दीखता है फिर बाण के रचित श्लोक जो शार्ङ्गधर पद्धति में उद्धृत हैं यदि वे रत्न वली में भी मिलते तो भी सन्देह न होता। अतः यही सम्भव है कि बा

* यथा काव्य प्रकाश के टीकाकार शितिकण्ठ।

कुछ अलगएट श्लोक बनाए होंगे। निदान इन्हीं आपत्तियों से मैं रत्ना-
ी को बाण भट्ट की बनाई नहीं मान सका।

ऊपर उक्त रत्नावली और नागानन्द को छोड़ एक कोष भी इस राजा
बनाया होगा क्योंकि क्षीरस्वामी ने 'अमरकोषोद्घाटन' नामक
मरकोष पर जो टीका लिखी है, उस में हर्ष यह एक कोषकार का नाम
लता है।

शाके १७७१ के माघ मास की तत्वबोधिनी पत्रिका के १९८ पृष्ठ में
बौद्धों की महावंश नाम पुस्तक के ५९ अध्याय से रत्नावली का वृत्तान्त
प्राया है; उस में लिखा है कि रत्नावली का पिता सिंहलद्वीप का शक
२३ में राजा था इस लेख से तो कश्मीर के राजा श्रीहर्ष ही रत्नावली
बनानेवाले जान पड़ते हैं।

धावक।

ऊपरउक्त राजा श्रीहर्ष ने इन के द्वारा रत्नावली और नागानन्द नामक
न्थ बनवाये; यह बात काव्यप्रकाश से जानी जाती है। और उस काव्य
काश के वैद्यनाथ, जयरामन्यायपञ्चानन और नागेशभट्ट ये तीनों टीका-
ार भी इसी को पुष्ट करते हैं। श्रीयुक्त ईश्वरचन्द्रविद्यासागर ने संस्कृत
ाषा और संस्कृत साहित्य विषयक प्रस्ताव के ४५ पृष्ठ में लिखा है कि
ालिदास के मालविकाग्निमित्र की प्रस्तावना में धावक कवि का नाम
मलता है। अतः वे राजा श्रीहर्ष के तुल्य कालिक नहीं हो सकते। परन्तु
द्यासागर महाशय की इस लिखावट को हम ठीक नहीं मान सकते
योंकि पण्डित लोगों की हाथ की लिखी मालविकाग्निमित्र की कई
तियों में धावक यह नाम नहीं मिलता किन्तु उस की सन्ती भासक का
ाम मिलता है।* विद्यासागर और डाक्टर टलवर्ग ने मालविकाग्निमित्र
ी किसी प्रति में धावक का नाम बांचा निरे इतने ही से मम्मटभट्ट आदि
ड़ पुराने पण्डितों की लिखी बात पर हरताल नहीं पोता जा सकता।

भगवत्पाद शङ्कराचार्य।

यद्यपि अध्यात्म शास्त्र ही में इन के ज्ञान की अधिक प्रतिष्ठा है; काव्य
ाहित्य के व्यवसाय में इन की तादृश ख्याति नहीं है पर आनन्दलहरी
ादि काव्य जो इन के बनाये प्रसिद्ध हैं, उन को पढ़ने से इन्हें महा कवि

* देखो वासवदत्ता पर Dr Hall की प्रकाशित इंग्लिश भूमिका १८ पृष्ठ।

कहे बिना नहीं रहा जाता। इसी हेतु से मैंने इन की कवियों के
गिनती की है।

शङ्कराचार्य मलाबार देश के पाल्घुरिनामक ब्राह्मण वंश में उत्पन्न
थे। इन के पिता का नाम विश्वजित् और माता का नाम विशिष्टा
आठ वर्ष की अवस्था में जनेऊ हो जाने पर ये वेदाभ्यास में लग
थोड़े ही समय में इन की विद्या की अकथ्य उन्नति देख सभी को
आश्चर्य हुआ। बारह वर्ष की अवस्था में पिता की मृत्यु हो जाने प
ये यथापूर्व ज्ञान वार्त्ता ही में तत्पर रहे। बहुत थोड़ी ही वय में
संन्यासी होना चाहा पर इन की माता अनुमति नहीं देती थी। इस
कुछ काल तक रुके रहे। इस विषय में एक प्रचलित कथा (इति
सुनने में आती है कि किसी दिन ये अपनी माता के साथ थोड़ी
किसी अपनैत के घर गये थे। लौटने समय मार्ग में देखा कि जात
जिस नदी को बिना प्रयास पार कर गये थे अब वह वर्षा के
भरपूर हो गई है। वर्षा थंभने और पानी का तोड़ कुछ घ
जल में माता के संग हले और गले तक जल में जब पहुंचे, तब म
कहा कि यदि तुम मुझे संन्यासी होने की अनुमति नहीं देती हो
हम तुम दोनों बूड़ मरेंगे और यदि संन्यास लेने की अनुमति
तो ईश्वर से प्रार्थना कर के मैं अपना और तुम्हारा दोनों
बचाऊंगा। ऐसे घोर सङ्कट में शङ्कराचार्य की माता ने विवश
अनुमति देना स्वीकार किया। तब माता को पीठ पर वि
शङ्कराचार्य पैर कर पार पहुंचे और तीर पर उसे उतार वि
दण्डवत प्रदक्षिणा कर वहां से चल दिये। कलियुग में दण्ड
निषेध का खण्डन इन्हीं महात्मा ने किया।

शङ्करजय, शङ्करदिग्विजय और शङ्करविजयविलास आदि
ग्रन्थों में शङ्कराचार्य के दिग्दिगन्तर परिभ्रमण का और जब उ
समय के जिस मत के आचार्य को शास्त्रार्थ में परास्त किया
विस्तार से वर्णन मिलता है। 'शङ्करजय' शङ्कराचार्य के शिष्य
गिरि का और 'शङ्करदिग्विजय' सायणाचार्य के भाई माधवा
बनाया है। इन दोनों ने ब्यौरेवार शंकराचार्य का जीवनचरि
किया। सायणाचार्य विजयनगर के राजमन्त्री थे। तैलंगी
केरल उत्पत्ति नाम एक पोथी है। उस में उन के बालचरित्र
कावेलीवेंकट रामस्वामी ने दक्षिण देश के कवियों का जीवनचरि
लित किया है। उस में भी शंकराचार्य का कुछ वर्णन दिया है

चार्य का समय निरूपण अब लौं ठीक नहीं हुआ है *। तौभी पक्के पीछे प्रमाणों से कुछ अनुमान मन में समाता है। माधवाचार्य के भाई सायणाचार्य अपने बनाये ग्रन्थों में संगम राजा का नाम देते हैं। आज लगभग छत्तीस वर्ष बीते होंगे चित्रदुर्ग में एक पीतल का पत्र हाथ लगा है †। उस में देवनागराक्षर में राजा संगम, उस के पुत्र हरिहर और बुक्कराय इत्यादि के नाम तथा उन के राज्यकाल की मिति भी खुदी है। यथा—

अभूदस्य कुले श्रीमान् भूमौ गुरुगुणोदयः।
अमाम दुरितासह्यः सङ्गमो नाम भूपतिः ॥ ६ ॥
आसन् हरिहरः कम्पो बुक्करायो महीपतिः।
मारपो मुद्दः पञ्चेति कुमारास्तस्य भूपतेः ॥ ७ ॥

अर्थात्—इस के वंश में अनघ और उत्तमोत्तम गुणवन्त श्रीमत्संगम राजा हुए। उन के पांच बेटे थे। उन के नाम यथा—हरिहर, कम्प, बुक्कराय, मारप, और मुद्द।

---

* तदाह कविः

"ब्रह्मा विष्णुर्वसिष्ठश्च शक्तिश्चैव पराशरः।
व्यासः शुको गौड पादो गोविन्दस्वामि शङ्करौ ॥
अर्थात्—ब्रह्मा विष्णु वसिष्ठ पुनि, शक्ति पराशर व्यास।
शुकरु गौड गोविन्द यति, शङ्कर गुरुक्रम खास ॥

आद्यो वेदान्ताचार्यो ब्रह्मा, द्वितीयाचार्यो विष्णुः, तृतीयाचार्यो रुद्रः, चतुर्थाचार्यो वसिष्ठः, पञ्चमाचार्यः शक्तिः, षष्ठाचार्यः पराशरः, सप्तमाचार्यो व्यासः, अष्टमाचार्यः शुकः, नवमाचार्यो गौडः, दशमाचार्यो गोविन्दः, एकादशः शङ्कराचार्यः।"

[illegible]

† Asiatic Researches Vol. IX P. 415

हरिहर राजा ने जो भूमिदान की उस की तिथि उस दानपत्र के अन्त में खुदी है। यथा —

" शालिभूवह्निचन्द्रैस्तु गणिते धातृवत्सरे ।
माघमासे शुक्लपक्षे पौर्णिमास्यां महातिथौ ॥
नक्षत्रे पितृदैवत्ये भानुवारेण संयुते ॥"

([illegible])

अर्थात् शक १३१७ धाता (धातृवर्ष ?) नाम संवत्सर में माघ मास शुक्ल पक्ष मघा नक्षत्र युक्त पूर्णिमा रविवार को।

बेलगोल नाम पहाड़ में एक पत्थर पर लेख मिला है। उस में खुदा है कि शक १२९० में बुक्कराजा ने जैन और वैष्णव के बीच का विवाद मिटा के उन में परस्पर मेल करा दिया। इस से सिद्ध होता है कि हरिहर राजा शक १३१७ में जीवित थे। इस गुप्त से अटकल में आता है कि बुक्क के पिता सङ्गम राजा के राजमन्त्री माधवाचार्य के भाई और अधिक नहीं तो भला पचासवर्ष पहिले तो जीवते रहे होंगे। येही माधवाचार्य * स्वरचितशङ्कर दिग्विजय के आरम्भ में स्पष्ट कहते हैं कि "प्राचीन शङ्करजयसारः संगृह्यते स्फुटम्" अर्थात् प्राचीन शङ्करजय नाम ग्रन्थ का सारांश मैंने इस में सङ्कलित किया है। और भी वे लिखते हैं कि "स्तुतोऽपिसम्यक्कविभिः पुराणैः" अर्थात् और २ भी पुराने कवियों ने शंकराचार्य का जीवनचरित वर्णन किया है। जो ग्रन्थकार न्यूनाधिक तीन सौ वर्ष से इधर उधर होते हैं बहुधा उन्हें पुराने नहीं कहते हैं। इस युक्ति से शंकराचार्य आठ सौ वर्ष से इधर के नहीं जान पड़ते। इस बात के और भी पक्के प्रमाण दुर्मिल नहीं हैं। शंकराचार्य की जन्मभूमि मलयवार देश के लोगों का दृढ़ निश्चय है कि ये महात्मा सहस्र वर्ष पूर्व में जीते थे और तैलंगी भाषाकी केरल उत्पत्ति नाम पुस्तक के लेख से विदित होता है कि न्यूनाधिक सहस्रवर्ष पूर्व जिन दिनों कृष्णराव युद्ध में शिवराव से हारे उन दिनों शंकराचार्य मलयवार देश में विद्यमान थे। यों केरलोत्पत्ति तथा शंकराचार्य की जन्मभूमि के निवासी लोगों के बीच जो प्रचलित वार्ता है इत्यादि सूत्रों से जहां तक पता लगता है उस से यही बोध होता है कि शंकराचार्य सहस्रवर्ष से कुछ इधर वा उधर रहे

---

* माधवाचार्य ख्रीष्टीय १३५० प्रायः में विद्यमान थे। (साङ्ख्यप्रवचनभाष्य की भूमिका

होंगे* शंकरदिग्विजय में लिखा है कि शंकराचार्य कश्मीर में गये और वहां अपने विपरीत मतवालों को परास्त कर के सरस्वती की पीठभूमि नाम मठ में बसे। राजतरंगिणी के एक वृत्तान्त लेख में ऊपर उक्त घटना झलकती सी है। वह वृत्तान्त यह है कि ललितादित्य के राज्य के पिछले समय में कुछ तीर्थयात्री लोग कश्मीरवालों से मिलने और वहां के सरस्वती मन्दिर के दर्शन के लिये आये थे। उस समागम में धर्म विषय का कोई प्रसंग छिड़ जाने से वाद विवाद में तुमुलसंग्राम हुआ।

"गौडोपजीविनाभासी त्सत्यमत्यद्भुतन्तदा।
अहुर्यज्जीवितंधीराः परोक्षस्य प्रभोः कृते ॥ ३२५ ॥
शारदादर्शनामिषात् काश्मीरान्सम्प्रविश्यते।
मध्यस्थदेवावसथं संहताः समवेष्टयन् ॥ ३२६ ॥"

(कल्हण राजत० ४ तरंग)

अर्थात्—ललितादित्य के राजकाल में गौड़राज्य के आश्रित कुछ धैर्य के पक्के लोगों ने अनिर्वचनीय प्रभुभक्ति की थी इन्द्रियातीत देवता के नाम पर अपने प्राण न्यौछावर कर दिये। सरस्वती दर्शन के बहाने से काश्मीर देश में पैठे और इकट्ठे हो वहां के देवमन्दिर को चारों ओर घेर आये।

भुवनमनोहर काश्मीर देश में जो परम रमणीय सरस्वती पीठ है वहां दोनों दल में धर्मविषयक मतभेद की वार्ता छिड़ जाने से बड़ा वाद विवाद हुआ इत्यादि। राजतरंगिणी लिखित यह विवाद अधिकांश

में शंकर दिग्विजय लिखित काश्मीर की घटना से पूरा मेल खाता है। हो न हो राजतरंगिणी के उक्त विवाद में एक दल के नेता शंकराचार्य और उन के अनुगामी शिष्यगण रहे हों। राजतरङ्गिणी में उन सब लोगों को गौड़ राज के आश्रित कहा है। इस का कारण ज्ञात पड़ता है कि शंकराचार्य के बहुत से गौड़ देशीय शिष्य रहे होंगे अथवा ग्रन्थकार के मत से गौड़ के आश्रित हो कर के परिचित हुए हों पर किस कारण से यह नाम उन्हें मिला तिस का पता नहीं लगता। राजतरङ्गिणी से जाना जाता है कि आज से ११७५ वर्ष पहिले ललितादित्य का राज्य समाप्त हुआ। राजतरंगिणी में वर्णित घटना के समय से शंकराचार्य के समय निरूपण के विषय में पूर्वप्रदर्शित युक्तियों से निर्णीत समय में अधिक हेर फेर नहीं दीखता है। अतः बहुत सम्भव है कि शक ७०० से कुछ पहिले शंकराचार्य जगत् में प्रादुर्भूत भये हों।

शंकराचार्य के रचित ग्रन्थों में से कुछ एक के नाम ये हैं। ब्रह्मसूत्र, दशोपनिषद्, श्वेताश्वतरोपनिषद्, भारतक पंचरत्न इन सब ग्रन्थों पर * भाष्य। आनन्दलहरी, मोहमुद्गर, साधनपंचक, यतिपंचक, आत्मबोध अपराधभंजन, वेदसार शिवस्तव, गोविन्दाष्टक, यमकाष्टपदी स्तुति।

भृंगगिरि के निकट तुंगभद्रा नदी के तीर पर एक मन्दिर बना सरस्वती की मूर्तिस्थापन कर जो प्रार्थना शंकराचार्य ने की है उस में से कुछ श्लोक उठा के यहां नीचे लिखते हैं—

साकारश्रुतिमुल्लङ्घ्य निराकार प्रवादतः।
यदघं मे कृतं देवि तद्दोषं क्षन्तुमर्हसि॥
त्वमेव जगतां धात्री शारदेऽक्षर रूपिणि।
तव प्रसादाद्देवेशि! मूको वाचालतां व्रजेत्॥
विचारार्थं कृतं यच्च वेदार्थन्तु विपर्ययम्।
देवानां जप यज्ञादि खण्डितं देवतार्चनम्॥
स्वमत स्थापनार्थाय कृतं मे भूरि दुष्कृतम्।
तत्क्षमस्व महामाये परमात्मस्वरूपिणि॥

---

* "गीता सहस्रनामैव स्तोत्रराज मनुस्मृतिः।
गजेन्द्र मोक्षणश्चैव पञ्च रत्नानि भारते॥"
अर्थात्—गीता नाम सहस्रमनु स्मृति भीष्म स्तवराज।
और मोक्ष गजराज पंच-रत्न भारत मांज॥

दर्शाया जा चुका है। बहुधा ऐसी कुचाल चली आती है कि जब कि
विषय में कोई नाम का काम जांच के लिये आगे आ पड़ता है औ
जिज्ञासा होती है कि यह किस की कृति है; तब लोग विना विवेचना कि
ही उस विषय में दक्ष किसी प्रसिद्ध पुरुष के नाम का भर्रा मचा दे
हैं कि उस को छोड़ दूसरे किसी से यह ऐसा नहीं बन सकता है। लो
हितजनक वा उपदेश स्वरूप वाक्य सुनकर लोग कहते हैं कि डाक का क
है पर डाक कौन थे यह कोई नहीं बताता। अनुमान होता है कि इ
धारानुसार संस्कृत की उद्भट स्फुट कविता कान में पड़तेही मात्र वे
अनाय सनाय बक देते हैं कि यह कालिदास का कहा है। मुझे न चाहि
कि जानते बूझते ऐसी बिनशिर पांव के गपोड़ियेपन की बातों का आध
लेऊं अतः अमरु शतक के टीकाकार की लेखनी से लिखित बात
तनिक सहारा लेता हूं।

इस टीकाकार का नाम कलाधर है। उस ने तिलक के आरम्भ
लिखा है। दन्त कथा सुनने में आती है कि काश्मीर के सभ्य लोग का
रचना में कुशल होते हैं। जब उन्हों ने दिग्विजयी भगवत्पाद शंकराचा
के साथ शास्त्रार्थ में अपने को हारते देखा तो प्रतिष्ठा बचा रखने के लि
चतुराई रची। वे जानते थे कि शंकराचार्य ने छुटपन ही से विरक्त
संन्यास ले लिया है। शृंगार रस की कविता इन से बनाते न बनेगी
आओ उसी विषय में उपतके छेड़ें और जब उस में इन की दौड़
लगे तब इन के हार की थपोड़ी पीटें। निदान उन्हों ने कहा कि का
के नवो रसों में शृंगार रस मुख्य है। इसी से उसे आदिरस कहते हैं
सो जो कोई तद्विषयक कविता रच सके जानना चाहिये कि उस से को
रस नहीं छूटा। इस के प्रमाण के लिये उन्हों ने—

"शृंगारी चेत् कविः काव्ये जातं रसमयं जगत्।"

अर्थात्—यदि कवि वर्णि सके शृंगारा।
गुनिए भयो रसमय संसारा॥

यह आधा श्लोक पढ़ा और प्रेरणा की कि आप आदिरस
कविता बनाइये। उन्हों के इस बचन को सुन शंकराचार्य सद्यः शृंगा
र्गभित कविता न बना सके क्योंकि वे जन्म से ब्रह्मचारी थे।
के प्रसंग में भी नहीं पड़े थे, तौभी उन सबों को परास्त करने
[illegible] योगशक्ति से अमरु नाम किसी राजा के

* कस्त्वं तासु यदृच्छया कितव यास्तिष्ठन्ति गोपाङ्गनाः
प्रेमाणं न विदन्ति यास्तव हरे किं तासु ते कैतवम्।
एषाहन्त हतोशया यद्भवं त्वय्येकतानापरं
तेनास्याः प्रणयोऽधुना खलुममप्राणैः समं यास्यति॥

अर्थात्—ग्वारि गँवारि कितव तव प्रीती। जानहिं नहिं तिन्ह संग छ
कियै कहा हहा लगन जु मेरी। गिरे मनहु अब प्राण ह

वाक्पति श्रीराजदेव।

ये कन्नौज के राजा यशोवर्मा की सभा के सभासद् थे। राजत
में लिखा है कि राजा यशोवर्मा कश्मीर के महाराज ललितादित्य के
काल में विद्यमान था। यथा—

कवि वाक्पतिराजश्रीभवभूत्यादिसेवितः।
जितो ययौ यशोवर्मा तद्गुणस्तुतिवन्दिताम्॥

(कल्हण राजतरंगिणी के ४ थे तरंग का १४५ :

अर्थात्— सेवत जिहिं कवि वाकपति राजश्रीभवभूति।
जित यशवर्मा वन्दि् बनि जासु करी गुण नूति॥

इस श्लोक से वाकपति और राजश्री ये दो भिन्न जन जान
परन्तु दशरूपक के चौथे परिच्छेद के ५३ श्लोक की टीका में 'श्र
पति राजदेवस्य' ऐसा लिखा मिलता है; उस से विदित होता
वाक्पति श्रीराजदेव इतना एकही का नाम था। अनुमान होता
संज्ञा (नाम) तो राजदेव और वाक्पति उपाधि रही होगी।

इस कवि का निर्मित कोई काव्य प्रसिद्ध है कि नहीं सो मैं न
सका। हां दशरूपक की टीका में उन का बनाया जो श्लोक उठा
है, उस के पढ़ने से छिपा नहीं रहता कि इन में कविताशक्ति
थी। यथा—

---

* बंबई में ऐसा पाठ है—

कस्त्वं योषु यदृच्छया कितवया स्तिष्ठन्ति गोपाङ्गनाः
प्रेमाणं न विदन्ति यास्तव हरेः किमत्याहते. कैतवं।
एषा हन्त हताशया यद्भवं तस्येकतानापरं
में नास्याः ... ... प्राणैः समं यास्यति॥

यह कहना है कि ब्रह्म से जगत् भिन्न नहीं है किन्तु रज्जु पर सर्प की भांति ब्रह्मरूपी अधिष्ठान पर मिथ्या जगत् की प्रतीत होती है * बहुतों ने विवर्त्तवाद को नया चलाया मत कहा है। छओ दर्शनों (षडदर्शन) के सूत्रों की व्याख्याकर्त्ता विज्ञानभिक्षु ने सांख्यसूत्र की व्याख्या में लिखा है कि विवर्त्तवाद की मूलभित्ति जो मायावाद की वेदान्त सूत्र भर में कहीं भी चर्चा नहीं है †।

बौद्धों में जो विज्ञानवाद है; माया वाद उसी की छाया है। इसी से पद्मपुराण में शांकरवेदान्त को प्रच्छन्न बौद्धमत कहा है। यथा शिवपार्वती के सम्वाद में शिव का वचन है—

" मायावाद मसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमेवच।
मयैव कथितं देवि कलौ ब्राह्मण रूपिणा ॥" इत्यादि।

अर्थात—मायावाद न शास्त्र शुभ, गुप्त बौद्ध मत रूप।
सुनहु देवि कलिमहं हमहिं, धरि द्विज रूप निरूप ॥

इसी वचन के आधार से बहुतेरों ने इस मत की निन्दा की है और श्री श्रीचैतन्यचरितामृत ग्रन्थ में भी विवर्त्तवाद को आधुनिक काल्पनिक कह के दरसाया है। यथा—

ईश्वर निज अचिन्त्य शक्ती से। जगतरूप में परिणत दीसे ॥ ‡
जिमि सुवर्ण स्रवणी मणि सेती। स्रवत स्वर्ण तिमि हरितें गेती ॥ §

---

* ऐसी ही भ्रान्त प्रतीति के कारण मिथ्या रूपान्तर प्राप्ति को विवर्त्त कहते हैं। (अनुवादक)

† ब्रह्ममीमांसायां केनापि सूत्रेणाविद्यामात्रतो बन्धस्यानुक्तत्वात्। ...यत्तु वेदान्तिब्रुवाणामाधुनिकस्य मायावादस्यात्रलिङ्गं दृश्यतेतत्तेषामपि - विज्ञानवाद्येकदेशितया युक्तमेव। न तु तद्वेदान्तमतम् ॥...अनयैवरीत्या नवीनानामपि प्रच्छन्नबौद्धानां मायावादिनामविद्यामात्रस्य तुच्छस्यबन्धहेतुत्वं निराकृतं वेदितव्यम्। " साङ्ख्य सूत्र १ अध्याय २२ भाष्ये।

ये वाक्य अत्यन्त छुट फुट उठाये हैं। पर्यालोचित देख मैंने सांख्य प्रवचन भाष्य देखा तब यह स्थल मिला। अतः इस अंश का अन्यथा करना वृथा है क्योंकि बिना पूर्वा पर उठाये तात्पर्य बोधगम्य न होगा। (अनुवादक)

‡ क्योंकि वेदान्त के १ अध्याय ४ पाद का २६ वां सूत्र ' आत्मकृते परिणामात् ' ऐसा है। अर्थात् पूर्ण सिद्ध ब्रह्मपरिणाम भाव से आप अपने को जीवादि दशापन्न कर बैठा है और ... में कहा गया है।

यथा :—

" रामजाख्यमुपाध्याय व्यातव्याकरणश्रमम् ।
व्याख्यासृपदके चक्रे स तस्मिन्सुरमन्दिरे ॥ "
(कल्हणराजतरङ्गिणी ५ तरङ्ग २९ श्लोक)

अर्थात्

वैयाकरण धुरन्धर रामज। उपाध्याय कहँ व्याख्या कारज ॥
या सुर मन्दिर महँ यह भूपा। पद पर नियत कियेउ अनुरूपा ॥

और " मुक्ताफलः शिवस्वामी कविरानन्दवर्द्धनः।
प्रथां रत्नाकरश्चागात् साम्राज्येऽवन्तिवर्मणः ॥ "
(राजत० ५ तरंग ३९ श्लोक)

अर्थात्—नृपति अवन्ती वर्म के, मुक्ताफल शिवस्वामि ।
कवि आनँदवर्द्धनरतन, आकर ये यह नामि ॥

माहेश्वर ।

इनने साहसांकचरित नाम एक काव्य रचा। उस में कन्नौज के महा-
[illegible] साहसांक का जीवनचरित वर्णित है। यह राजा शक ८२२ अर्थात्
[illegible]० खीष्टाब्द में वर्त्तमान था। इस से ऊहित होता है कि उस के वृत्तान्त
[illegible]क ये कवि भी उसी समय में रहे होंगे। कोई २ कहते हैं कि ये शक
[illegible]३३ अर्थात् खीष्टाब्द ११११ में वर्त्तमान थे * परन्तु उनके इस कथन
[illegible] हम निर्मूल नहीं मान सकते क्योंकि श्रीहर्ष निर्मित भी
[illegible] साहसांकचरित है। माहेश्वर कृत प्राचीन साहसांक चरित से
भेद द्योतित करने के लिये इस साहसांकचरित के नाम के आगे
[illegible] (नवीन) शब्द लगाया गया है † जिस से स्पष्ट प्रकट होता है
[illegible] नव साहसांकचरित के रचयिता श्रीहर्ष की अपेक्षा आदि साहसांक-
[illegible]रित के रचयिता कवि प्राचीन हैं। प्रमाणों से निर्णय हो चुका है कि श्री-
[illegible] खीष्टीय नवींशताब्दी में जीवित थे। फिर उन की अपेक्षा प्राचीन कवि
[illegible]न् ११११ खीष्टाब्द में आवें यह बात कैसे बुद्धि में समा सकती है? अंग-

---

* देखो वासवदत्ता पर फिट्ज़ एडवर्ड हाल महाशय की लिखी अंग्रेज़ी भूमिका।

† [illegible]

रेज महाशयों के लेखों में भूल चूक नहीं होती यह कोई शपथ नहीं क्योंकि विल्फर्ड विलसन् महाशय की मति के अनुगामी फिट्ज़ एडवर्ड हाल एम० ए० (Fitz Edward Hall M. A.) महाशय ने वासवदत्ता की अंगरेजी में जो भूमिका लिखी है, उस में वे आप कहते हैं कि कथासरित्सागर के ग्रन्थकर्त्ता सोमदेवभट्ट शक ११२२ अर्थात् खीष्टाब्द १२०० में जीते थे * । परन्तु राजतरंगिणी से जाना जाता है कि सोमदेव काश्मीर नरेश अनन्तदेव के पास रहते थे । राजतरंगिणी के ग्रन्थकर्त्ता कल्हण पण्डित जिसने काश्मीर के महाराज अनन्तदेव का भी चरित्र वर्णन किया है शक १०७० में विद्यमान थे । उन की राजतरंगिणी के अनुसार जब लेखा लगाते हैं तो अनन्तदेव का समय ६५५ से १००७ तक ठहरता है । तिस से उक्त महाशय के लेखा लगाने में ११४ वर्ष की वढ़ती की भूल उघड़ पड़ती है । ऐसी भूल चूक लोगों से होतीही रहती है । कहनावत है

" मुनीनाञ्चमतिभ्रमः "

अर्थात्—मुनिन्हहु की मति धोखा खाय ॥

भट्टनारायण ।

सेन राजाओं की वंशावली का वर्णन देखो रहस्यसन्दर्भ ३ पर्व खं० ५८ पृष्ठ से । उस में डाक्तर राजेन्द्रलाल मित्र महाशय ने बहुत प्रमाण देकर सिद्ध किया है कि आदिशूर शक ९१६ अर्थात् खीष्टाब्द ६६४ में गौड़देश के महाराज थे † इन राजा ने यज्ञ के अनुष्ठान

---

* यह भी वासवदत्ता की अंगरेजी भूमिका में उसी भूमिका के बनानेवाले ने लिखा है।

† डाक्तर राजेन्द्रलाल मित्र ने पाल और सेनवंशी राजाओं का विवरण लिखा था वह विवरण उन के बनाये Indo Aryan इण्डिया एरियन नाम पुस्तक के दूसरे खण्ड में छपा है । उस में उन ने कहा है कि आदिशूर का दूसरा नाम वीरसेन था । उन्होंने ९८६ से १००६ खीष्टाब्द तक राज्य किया । जेनरल कनिङ्हम महाशय बताते हैं कि वीरसेन खीष्टीयसातवीं शताब्दी में वर्त्तमान थे । वेणीसंहारनाटक की भूमिका में श्रीयुक्त प्रसन्नकुमारठाकुर ने निर्देश किया है कि आदिशूर १०६३ खीष्टाब्द में वर्त्तमान थे। और [illegible] ने मित्र रचित 'बहु विवाह' नाम पुस्तकमें बतलाया है कि [illegible] ९९९ शकमें पांच ब्राह्मणों को बुलानेके लिये कन्नौज के राजा के पास दूत भेजा [illegible] प्रसंगमें 'क्षणचन्द्रचरित' नाम संस्कृतपुस्तकके निम्नलिखित वचनको उठाया है।

[illegible] नवनवत्यधिक[illegible]गतोगताब्दे पञ्चब्राह्मणानानयामास

[illegible]

प्रयोजन से कन्नौज से पांच ब्राह्मणों को बुलवाया। उन पांचों में भट्टनारायण एक मुख्य थे * गौड़देश में आने से पहिले उन ने वेणीसंहार-नाम नाटक रचा था। उसे वे बहुत आदर का धन मानते और जुगाते थे। राजा आदिशूर की भेंट के आशीर्वादात्मक पद्य में उन ने तिस का उल्लेख किया है। यथा :—

वेणी-संहारनामा परमरसयुतो ग्रन्थ एकः प्रसिद्धो
भो राजन् ! मत्कृतोऽसौ रसिक गुणवतायत्नतो गृह्यते सः।
नाम्नाहं भट्टनारायण इति विदितश्चारुशाण्डिल्य गोत्रो
वेदे शास्त्रे पुराणे धनुषिच निपुणः स्वस्ति ते स्यात् † किमन्यत् ॥

अर्थ।

वेणीसंहार नामा अति सरस इक ग्रन्थ विख्यात है सो
हे राजन् मैं बनायों तिहि रसिक गुणी चाहते चित्त से हैं।
मेरो है भट्टनारायण यह अभिधा गोत्र शाण्डिल्य नांको
जानौ शास्त्रौ पुराणौ श्रुतिधनुषटुहौं स्वस्तितै औ कहूं क्या ॥

श्री युक्त बाबू प्रसन्नकुमार ठाकुर महाशय ने यत्न कर के वेणीसंहार नाटक छपाया और उस के आरम्भ में एक वंशावली की तालिका दी है। उस के पढ़ने से विदित होता है कि आप (प्रसन्न कुमार ठाकुर) भट्टनारायण के वंश में ३२ वीं पीढ़ी में पड़ते हैं।

भट्टनारायण की दूसरी कृति धर्मशास्त्र विषयक प्रयोगरत्न नाम ग्रन्थ है§।

---

* " भट्टमाहेश्वरसुतो भट्टनारायणः सुधीः "

अर्थात् भट्टनारायण पण्डित भट्टमाहेश्वर का पुत्र है। [illegible] पद्धति का प्रथम [illegible] इस पुस्तक की [illegible] में है।

† कोई २ कहते हैं कि [illegible] न होने के कारण भट्टनारायण ने इस श्लोक में प्रार्थना अर्थ 'स्यात्' पद विधिलिङ् का प्रयोग किया। इस का और भी उदाहरण मिलता है यथा [illegible] नाम से प्रसिद्ध वैदिक ग्रन्थ में '[illegible]' अर्थात् [illegible] विधिलिङ् का प्रयोग किया है। (अनुवादक।

§ शब्द कल्पद्रुम ५ खण्ड [illegible] पृष्ठ में [illegible] " [illegible] " वचन के ऊपर [illegible] नारायण की लिखी व्याख्या [illegible] है। इस के देखने से सूचित होता है कि इस का [illegible] कोई और भी था। कोई २ कहते हैं कि [illegible] के राजा और भट्टनारायण के [illegible] है। और [illegible] के समय से यह [illegible] कहा जाता है। भट्टनारायण के वंश में [illegible] [illegible] बताई।

श्रीहर्ष कन्नौज के रहवैये थे क्योंकि नैषध काव्य की समाप्ति में वे आप लिखते हैं कि मैं धन्य हूं, जिसे कन्नौज के महाराज अपने हाथ से मान के दो बीड़े पान देते हैं । आदिशूर राजा के बुलाये कन्नौज से जो पांच ब्राह्मण आये थे, उन में जिन श्रीहर्ष का नाम मिलता है, उन की भी कवियों की मण्डली में प्रामाणिक प्रसिद्धि है । श्रीहर्ष के बनाये ग्रन्थों में अर्णववर्णन और गौड़ोर्वीश कुलप्रशस्ति दो काव्यों के प्रसंग भी हैं । गौड़देश देखे विना कोई कश्मीरी मनुष्य गौड़ के राजा और उस की सीमा समुद्र के वर्णन में कविता बना सके, यह कठिन बोध होता है । श्रीहर्ष ने कन्नौज के राजा साहसाङ्क का जीवनचरित भी वर्णन किया है । उस से भी यह निकलता है कि ये कवि उक्त राजा के समान समय में किंवा कुछ पीछे रहे होंगे । उधर साहसाङ्क का राज्य शक के ८२२ अर्थात् ९०० खीष्टाब्द में और इधर आदि शूर का राज्य-समय शक ९१६ अर्थात् ९९४ खीष्टाब्द में था । इस से निष्पन्न होता है कि साहसाङ्क के अभ्युदय के कुछ काल पीछे श्रीहर्ष हुए और उन का गुण गान किया ।

परन्तु मुझे यह समय निरूपण खटकता है । इस का कारण दरसाता हूं । आदिशूर ने जिन दिनों कन्नौज से पांच ब्राह्मणों को बुलाने का नेवता भेजा, उन दिनों वहां वीर सिंह नाम राजा राज्य करता था । श्रीहर्ष ने कहीं कुछ उस की चर्चा नहीं की है । आदिशूर के भेंट के श्लोक में भट्टनारायण ने अपनी चिन्हानी वेणीसंहार से दी है । पर श्रीहर्ष ने भेंट के श्लोक में वैसी कोई चिन्हानी नहीं उल्लेख की है । यदि नैषधादि पुस्तकें उन श्रीहर्ष की बनाई होतीं तो उन में से वे किसी न किसी का नाम निर्देश अपने रचित श्लोक में * करते । नैषध के कवि श्रीहर्ष ने खण्डनखण्डखाद्य में उदयनाचार्य के वचन की कोटि की है । इस उदयनाचार्य को लोग बतलाते हैं कि भादुड़ी अर्थात् भरद्वाज गोत्र थे । यदि यह सत्य है तो उक्त आचार्य बल्लाल सेन के समय से पीछे हुए ठहरते हैं । फिर खण्डनखण्डखाद्य में उन का नाम कैसे आ सकता है ।

* श्रीहर्ष रचित ग्रन्थों के नाम यथा । १ स्थैर्यविचारण, २ विजय

* " नाम्नाह श्रीहर्ष, क्षितिपवर भरद्वाज गोत्र पवित्रो
निर्त्यं गोविन्द पादाम्बुज युग हृदय सर्वशोभाविलासी "
[illegible]

प्रशस्ति, ३ खण्डनखण्ड खाद्य, ४ गौड़ोर्वीशकुलप्रशस्ति ५ अर्णव वर्णन, ६ शिवशक्तिसिद्धि, या शिवभक्तिसिद्धि ७ नवसाहसाङ्क चरित, ८ नैषधचरित, ९. छन्दःप्रशस्ति * ।

कलकत्ते के शांखारि टोला के निवासी श्रीयुक्त रघुनाथ वेदान्त वागीश महाशय ने श्रीकृष्ण जी के ककारादि सहस्रनाम की व्याख्या की है। उस में उन ने अपने वंश की पहिचान देने के अवसर पर श्रीहर्ष की वंशावली लिखी है। उस का संक्षेप ब्योरा यहां पर उठाता हूं। उस के पढ़ने से लोगों के मन को समाधान होगा। ब्रह्मा के पुत्र अङ्गिरा, उन के बृहस्पति, उन के भरद्वाज हुए। इन्हीं भरद्वाज ऋषि से इन के गोत्र का नाम चला है। भरद्वाज के पुत्र कल्याण मित्र हुए। जिन मुनियों के नाम के स्मरण से बिजली से बचाव होता है, उन मुनियों के नाम मन्त्रात्मक श्लोक में इन का भी नाम है † कल्याण मित्र के भद्रसेन, उन के महा मुनि मदोत्कर, तिन के हरिसहाय, उन के हरिविश्व हुए। हरिविश्व के पुत्र श्रीहर्ष हुए × । यही आदि शूर के यज्ञ में नेवते गौड़ देश में आये थे। ये सब शास्त्रपारङ्गत परम वैष्णव भरद्वाज गोत्रीय थे यह बात नीचे टिप्पणी में लिखित श्लोकों से प्रकट होती है § ।

---

* "ईश्वराभिसन्धि" ग्रन्थ भी इन्हीं का बनाया है" । (अनुवादक।)

† मुनेः कल्याण मित्रस्य जैमिने श्चापिकीर्त्तनात्।
विद्युदग्निभयं नास्ति पठिते च तपात्यये॥

अर्थात्—मित्र मित्र कल्याण मुनि, जैमिनि नाम ज़रूर।
ग्रीषम बिते मल्हारिये, विज्जु वन्हि भय दूर॥

× इस स्थान में एक पद को मानो बयोग पद विद्यमान होना चाहिये क्योंकि श्रीहर्ष ने अपने पिता का नाम श्रीहीर और माता का नाम मामल्ल देवी लिखा है। यथा देखो नैषध चरितप्रत्येक सर्ग की समाप्ति में -

"श्रीहर्षं कविराज राजिमुकुटालङ्कार हीरः सुतं
श्रीहीरः सुषुवे जितेन्द्रिय चयं मामल्ल देवी चयम्" इत्यादि।

अर्थात्—कविवरपङ्क्ति मुकुटमणि, पिता जासु श्रीहीर।
मामल्लदेवी मातु श्री, हर्षसुकविमतिधीर॥

§ वेदान्तमिहान्त सुनिथयार्थी दीक्षाक्रमाटानदयार्द्रचित्तः।
परात्मविद्यार्णवकर्णधारः श्रीहर्षनामभवनं ततोप॥

श्रीहर्ष के वंश में जलाशय हुए। उन के भी वंश में कोलाहल संन्यासी हुए। कोलाहल के पुत्र उत्साहाचार्य थे। वम्हनीती के लक्षण में जो नवगुण उद्दित हैं, उन नवों से पूरे होने के कारण इनको कुलीन पदवी मिली थी * उन के दो बेटे हुये। एक का नाम अथित दूसरे का महादेव था। यही महादेव खड़दह ग्राम में बस कर विद्यार्थियों को पढ़ाया करते थे तभी से इन के सन्तानों से खड़दह का मेल भया। महादेव के पुत्र विश्वेश्वराचार्य थे। श्री श्रीराधाकान्तदेव मूर्ति इन्हीं का स्थापित है और गोपालतापनी पर तिलक भी इनने किया है। इन के वंश में माधवाचार्य थे तत्पश्चात हरिआचार्य हुए। इन्हीं को लोग हरिगुरु कह के टेरते थे। इन के तीन पुत्र थे उन में से सब से छोटे का नाम नहीं मिला। दो के नाम योगेश्वर पण्डित और कामदेव हैं † योगेश्वर पण्डित का बेटा शङ्कर पण्डित

ताम्राहंश्रीलहर्षः क्षितिपवरभरद्वाजगोत्रः पवित्रो
नित्यं गोविन्दपादाम्बुजयुगहृदयः सर्वतीर्थावगाही।
चत्वारः साङ्गवेदाममुखपुरतः पञ्चपाणौ धनुर्मे
सर्वं कर्तुं समर्थोऽस्मि प्रकटयनृपतेस्त्वं सभां भाटमाग ॥"

अर्थात्—वेदान्तसिद्धान्तनिमास्यचित्ता दीक्षासमेतानिदयालुचित्ता।
पराक्रमविद्याम्बुधिपारनेता श्रीहर्षपार्थोऽजगहर्षदेता ॥
हों श्रीहर्षमदारविन्द चरणाम्भोजद्वयीध्यावह
सारतीर्थ समहागवोऽस्पभयोगोत्रभरद्वाज हो।
चारोसाङ्गश्रुतीमुखाग्रमहं धन्वाधरौपानि में
जो चाहौ सुकरौ प्रकाशियसभौ सेव्यामहाराजहे ॥

* [illegible]

† [illegible]

हुआ। उस ने अपने बाप ही से पढ़ा। शङ्कर के नयनानन्द, पूर्णानन्द सूरदास, कुमुदानन्द, और राघवानन्द ये पांच बेटे हुए। उन में से नयनानन्द के शिवराम और रामभद्र नाम दो पुत्र हुए। रामभद्र के भी दो पुत्र हुए। एक का नाम कृष्णजनवल्लभ और दूसरे का गोपीजनवल्लभ था। कृष्णजनवल्लभ के रामनारायण, रघुनन्दन और मधुसूदन ये तीन पुत्र थे। तिन में से रामनारायण के जो कई पुत्र थे; उन के बीच एक का नाम रामनाथ था। रामनाथ के बेटे रामगोपाल, उस के सप्तशति मुखोपाध्याय, * उन के श्री रघुनाथ वेदान्त वागीश † रामतनुभागवत भूषण, नीलकमल और नीलमाधव ये चार पुत्र हुए।

श्रीमुञ्ज।

श्रीमुञ्ज धारानगर के राजा थे ‡। ये राजा सिन्धुल के भाई और भोजराज के ताऊ (चाचा) थे। राघव पाण्डवीय काव्य के उपक्रम में इन का नाम देखने में आता है। यथा —

" श्रीविद्या शोभिनायस्य श्रीमुञ्जादियती भिदा।
धारापति रसावासीदयं तावद्धरापतिः॥"

अर्थात्— इहि तें रखत विभेद इत, मुंजज्ञान घन पुंज।
निखिल धरापति नृपति यह, धारापति श्रीमुंज॥

९५० शक के कुछ इधर या उधर ये हुए;ऐसा अनुमान होता है इस का विशेष विवरण भोजराज के समय के निरूपण के प्रकरण में किया जावेगा। इन का किया कोई काव्य प्रसिद्ध है या नहीं सो मुझे विदित नहीं है। दशरूपक के टीकाकार धनिक ने इन की रचित जिस कविता को उदाहरण कर के लिखा है वह नीचे लिखी जाती है। उस के पढ़ने से इन की कविताशक्ति की अच्छी परख हो सकती है। यथा—

प्रणय कुपितां दृष्ट्वा देवीं ससम्भ्रम विस्मितं
स्त्रिभुवन गुरु र्भीत्या यस्याः प्रणामपरोऽभवत्।
नमित शिरसो गंगा लोके तया चरणाहता-

---

* गये हुए।

† प्रसिद्ध पण्डित हैं। शब्दतत्त्व प्रकाशिका नाम ग्रन्थ इन्हीं का बनाया है।

‡ धाराराज्य मालवे में है। यहां महाराज भोज बसते थे।

धयतु भवतस्त्यत्तस्ये तद्विलक्षमवस्थितम् ॥" *

(दशरूपक ४ थे परिच्छेद के ४४ श्लो० की टीका)

इन का रचित "मुञ्ज प्रतिदेश व्यवस्था" नाम एक प्राकृत भूगोल विषयक पुस्तक है। यह खीष्टीय नवीं शताब्दी में निर्मित हुआ † ॥

धनञ्जय ।

धनञ्जय ऊपर उक्त राजा श्रीमुञ्ज के सभासद् थे। यह बात धनञ्जय ने आप स्वरचित दशरूपक की समाप्ति में लिखी है। यथा—

"विष्णोः सुतेनापि धनञ्जयेन विद्वन्मनोरागनिबद्धहेतुः ।
आविष्कृतं मुञ्जमहीशगोष्ठी वैदग्ध्यभाजा दशरूपमेतत् "

अर्थात्—मुञ्ज महीप सभा गुणमण्डित ।
विष्णु तनूज धनञ्जय पण्डित ॥
विरचि कीन्ह दशरूप प्रकाशा ।
जेहि पढ़ि बुध मन होउ हुलासा ॥

इस से जाना जाता है कि ये ८४० शक के थोड़ा इधर या उधर भये होंगे। इन का बनाया दशरूपक है। धनञ्जय निर्मित, 'नाममाला' नाम एक कोष भी सुन पड़ता है पर यह निश्चय नहीं होता है कि ये दो भिन्न२ जन के किंवा किसी एक ही के नाम हैं। हलायुध के पोते के परपोते का नाम भी धनञ्जय था और उसी ने नाममाला बनाई, ऐसा कहीं २ लिखा देखने में आता है। बाबू श्यामाचरण सरकार कोलब्रुक महाशय की सम्मति के सूत्र से लिख गये हैं कि हलायुध कोषकार धनञ्जय के पुत्र हैं। देखो, व्यवस्थादर्पण प्रथम खण्ड की भूमिका का ॥/) पृ.। परन्तु श्याम बाबू उस का कोई प्रमाण नहीं पहुंचाते हैं।

भोजराज ।

इस नाम से प्रसिद्ध कई जन होगये हैं पर उन में से प्रत्येक का समय निरूपण दुर्घट होता है × ।

---

* [illegible]

[illegible]

† Asiatic Researches vo. XII.

× [illegible] ... Vol. IV. P. 52.

भोजप्रबन्ध में भोजराज की कहानी है। धाराधीश भोजराज की जिस कहानी से उस में कुछ विशेष नहीं है परन्तु उन में उन के सभा पण्डितों की नामावली असंबिवत है क्योंकि वररुचि, सुबन्धु, बाण, मयूर और कालिदास इत्यादि जिन के नाम लिखे हैं। उन में से एक भी भोजराज का समसामयिक न था। कालिदास कृत महाशय के श्लोकों में कर्णाट के महाराज भोजराज की केवल विरुदावली मात्र है। उन श्लोकों के पढ़ने से विदित होता है कि राजा विक्रमादित्य के ठीक अनन्तर ही कोई भोजराज उजागर हुआ था और उस की सभा में कालिदास इत्यादि विद्वान लोग क्रम से उपस्थित हुए। इसी हृदय से मैं. विक्रमादित्य के वर्णन के उपरान्त ही वृद्ध भोजराज का वर्णन पूर्व में कर आया। भाव मिश्र ने भी स्वरचित भावप्रकाश में वृद्ध भोजराज को अन्यान्य भोजराजों से विलग कर के अलग निर्देश किया है। कोलब्रुक महाशय कहते हैं कि जब कभी एक ही ग्रन्थकार एक ही विषय के कई एक छोटे मोटे ग्रन्थ लिख डालता है तब ग्रन्थों में परस्पर विभेद बोधित करने के लिये लघु, वृद्ध, बृहत् इत्यादि विशेषण ग्रन्थ की संज्ञा के आगे जोड़ देता है। यथा लघुहारीत, वृद्धहारीत, वृद्धमनु, वृद्धशातातप, वृद्ध याज्ञवल्क्य, वृद्ध आपस्तम्ब, वृद्धपितामह, बृहत्पराशर इत्यादि। इस नाम से न जानना कि लघु और वृद्ध इन विशेषणों से हारीत नाम व्यक्ति ही में भेद है। कोलब्रुक महाशय को इस ऊहना में लघु और वृद्ध इत्यादिक विशेषण एक ही जन के जान पड़ते हैं परन्तु उन के ऊहित के विरुद्ध भी एक यह उदाहरण मिलता है। यथा—सुश्रुत के प्रसिद्ध जो दो ग्रन्थ हैं, उन दोनों की अपेक्षा वृद्ध सुश्रुत नामक ग्रन्थ बहुत ही पुराना है। यों गड़बड़ पड़ जाने से भोजराज के समय निरूपण में बड़ी अड़चन है।

एक ताम्रपत्र में खुदा है कि भोजराज के पुत्र उदयादित्य थे। उन के पुत्र लक्ष्मीधर के राजकाल में अर्थात् शक १०२६ या ११०४ खीष्टाब्द में राजा के छोटे भाई नरवर्मदेव ने इस प्रशस्ति के अक्षरों को खुदवाया था।

उज्जैन के ज्योतिषी लोग बताते हैं कि शक ९६४ अर्थात् १०४२ खीष्टाब्द में राजा भोज धारापुरी के अधीश्वर थे और कोलब्रुक महाशय इस बात पर पतियाते भी हैं क्योंकि 'शुभाषितरत्नसन्दोह' नाम ग्रन्थ में जो भोजराज का समय निरूपित है, उस से यह मिलता है।

वासवदत्ता की अंग्रेजी भाषा में लिखी भूमि- ... है कि जिन भोजराज ने सरस्वतीकण्ठाभरण बनाया है*

* है कि मालव देश के अधीश भोजराज इस ग्रन्थ के निर्माता हैं।

थे उदयादित्य के पिता की अपेक्षा बहुत प्राचीन हैं। उन ने यह भी कहा है कि विद्वान् विलसन् महाशय ने दोनों नाम में अन्तर न पाके दो जनों को एक ही जन जानकर धारेश भोजराज की विद्यमानता खीष्टीय ११ वीं शताब्दी में अर्थात् शक १०२२ में स्वीकार कर ली है; पर इस बात का कोई पुष्ट प्रमाण नहीं देते हैं।

मार्शमन महाशय कहते हैं कि धारा के अधिपति भोजराज १११२ शक अर्थात् ११९१ खीष्टाब्द में वर्तमान थे। इसी समय में कन्नौज के राजा जयचन्द्र ने अश्वमेध यज्ञ ठानने का बखेड़ा खड़ा किया था।

वासवदत्ता पर अंगरेजी भाषा में लिखी भूमिका के ५० पृष्ठ में लिखा है कि मुञ्जराज और भोजराज खीष्टीय नवीं शताब्दी में किसी समय हुए और दशवीं शताब्दी का भी कुछ अंश भोगा।

सिंहासनबत्तीसी का जो माड़वारी भाषा में उल्था हुआ है; उस में लिखा है कि संवत् १०६६ अर्थात् शक ९३१ या १००६ खीष्टाब्द में राजा भोज जीवन्त थे।

उर्दू ज़बान में तसनीफ़ की गई 'आराइशमहफ़िल' नामे किताब में दर्ज है कि विक्रमादित्य के इन्तकाल बाद ५४२ साल गुज़श्ता होने पर यानी संवत् १२८१ या शक १२६४ में (?) एक भोजनामे राजा था। उस के दरबार में बररुचि नामे एक दाना (पण्डित) शख्स था। उस ने संस्कृत ज़बान में सिंहासनबत्तीसी तसनीफ़ की।

कल्हण की राजतरङ्गिणी के पांचवें तरङ्ग में लिखा है कि राजा शङ्करवर्मा के भाग्यकाल में विख्यात भोजराज को युद्ध में जीता था। यथा-

" हृतं भोजाधिराजेन स साम्राज्यमदापयत्।
प्रतीहारतया भृत्यीभूते थक्कियकान्वये ॥"

अर्थात्—थक्किय ० कुलकर राज्य भोज हर।
थक्किय कुल सम प्रतीहारि कर ॥
पुनि शङ्करवर्मा चढ़ि गयऊ।
जीति भोज थक्किय हिं दयऊ ॥

यह १४६ वां श्लोक है। शङ्करवर्मा शक ८१२ से ८२९ तक कश्मीर का राजा था। फिर भी राजतरङ्गिणी के ७ वें तरङ्ग में एक भोजराज नाम आता है; जो राजा अनन्त देव का समसामयिक ठहरता है। यह

---

* ४००-८०० .

भोजप्रबन्ध में भोजराज की कहानी है। धाराधीश भोजराज के
निज कहानी से उस में कुछ विभेद नहीं है परन्तु उस में उन के सभा
पण्डितों की नामावली अनन्वित है क्योंकि वररुचि, सुबन्धु, बाण, मयू
और कालिदास इत्यादि जिन के नाम लिखे हैं; उन में से एक भी भोज
राज का समसामयिक न था। कालिदास कृत महापद्य के श्लोकों
कर्णाट के महाराज भोजराज की केवल विरुदावली मात्र है। उन श्लो
के पढ़ने से विदित होता है कि राजा विक्रमादित्य के ठीक अनन्तर
कोई भोजराज उजागर हुआ था और उस की सभा में कालिदा
इत्यादि विद्वान लोग क्रम से उपस्थित हुए। इसी लक्ष्य से मैं, विक्रमा
दित्य के वर्णन के उपरान्त ही वृद्ध भोजराज का वर्णन पूर्व में कर आया
भाव मिश्र ने भी स्वरचित भावप्रकाश में वृद्ध भोजराज को अन्यान्य
भोजराजों से विलग कर के अलग निर्देश किया है। कोलब्रुक महाशय
कहते हैं कि जब कभी एक ही ग्रन्थकार एक ही विषय के कई एक छो
मोटे ग्रन्थ लिख डालता है तब ग्रन्थों में परस्पर विभेद बोधित करने
लिये लघु, वृद्ध, बृहत् इत्यादि विशेषण ग्रन्थ की संज्ञा के आगे जोड़ दे
है। यथा लघुहारीत, वृद्धहारीत, वृद्धमनु, वृद्धशातातप, वृद्ध याज्ञवल्
वृद्ध आपस्तम्ब, वृद्धपितामह, बृहत्पराशर इत्यादि। इस नाम से
जानना कि लघु और वृद्ध इन विशेषणों से हारीत नाम व्यक्ति ही
भेद है। कोलब्रुक महाशय की इस ऊहना में लघु और वृद्ध इत्यादि
विशेषण एक ही जन के जान पड़ते हैं परन्तु उन के ऊहित के विरुद्ध
एक यह उदाहरण मिलता है। यथा—सुश्रुत के प्रसिद्ध जो दो ग्रन्थ
उन दोनों की अपेक्षा वृद्ध सुश्रुत नामक ग्रन्थ बहुत ही पुराना है।
गड़बड़ पड़ जाने से भोजराज के समय निरूपण में बड़ी अड़चन है।

एक ताम्रपत्र में खुदा है कि भोजराज के पुत्र उदयादित्य थे। उन
पुत्र लक्ष्मीधर के राजकाल में अर्थात् शक १०२६ वा ११०४ खीष्टाब्द
राजा के छोटे भाई नरधर्मदेव ने इस प्रशस्ति के अक्षरों को खुदवाया था

उज्जैन के ज्योतिषी लोग बताते हैं कि शक ९६४ अर्थात् १०
खीष्टाब्द में राजा भोज धारापुरी के अधीश्वर थे और कोलब्रुक महाश
इस बात पर पतियाते भी हैं क्योंकि 'शुभाषितरत्नसन्दोह' नाम ग्र
में जो भोजराज का समय निरूपित है, उस से यह मिलता है।

फिट्जएडवर्ड महाशय वासवदत्ता की अंग्रेजी भाषा में लिखी भूमि
का में लिखते हैं कि जिन भोजराज ने सरस्वतीकण्ठाभरण बनाया है

* लिखा है कि ... [illegible]

उदयादित्य के पिता की अपेक्षा बहुत प्राचीन हैं। उन ने यह भी कहा कि विद्वान् विलसन् महाशय ने दोनों नाम में अन्तर न पाके दो जनों को एक ही जन जानकर धारेश भोजराज की विद्यमानता खीष्टीय ११ वीं शताब्दी में अर्थात् शक १०२२ में स्वीकार कर ली है; पर इस बात का कोई पुष्ट प्रमाण नहीं देते हैं।

मार्शम्यन् महाशय कहते हैं कि धारा के अधिपति भोजराज १११३ शक अर्थात् ११९१ खीष्टाब्द में वर्तमान थे। इसी समय में कन्नौज के राजा जयचन्द्र ने अश्वमेध यज्ञ ठानने का बखेड़ा खड़ा किया था।

वासवदत्ता पर अंग्रेजी भाषा में लिखी भूमिका के ४० पृष्ठ में लिखा है कि मुञ्जराज और भोजराज खीष्टीय नवीं शताब्दी में किसी समय हुए और दसवीं शताब्दी का भी कुछ अंश भोगा।

सिंहासनबत्तीसी का जो माड़वारी भाषा में उल्था हुआ है; उस में लिखा है कि संवत् १०६६ अर्थात् शक ९३१ या १००९ खीष्टाब्द में राजा भोज जीवन्त थे।

उर्दू जुबान में तसनीफ़ की गई ' आराइशमहफ़िल ' नामे किताब में मुन्दर्ज है कि विक्रमादित्य के इन्तकाल बाद ५४२ साल गुजरता होने पर बपने संवत् १३८१ या शक १२४४ में (?) एक भोजनामे राजा था। उस के दरबार में बररुचि नामे एक दाना (पण्डित) शख़्स था। उस ने संस्कृत जुबान में सिंहासनबत्तीसीतसनीफ की।

कल्हण की राजतरङ्गिणी के पांचवें तरङ्ग में लिखा है कि राजाशङ्कर वर्मा ने भारतखण्ड में विख्यात भोजराज को युद्ध में जीता था। यथा—

" हृतं भोजाधिराजेन स साम्राज्यमदापयत्।
प्रतीहारतया भृत्यी भूते थक्कियकान्वये ॥"

अर्थात्—थक्किय * कुलकर राज्य भोज हर।
थक्किय कुल मम द्वारादिहारि कर ॥
पुनि शङ्करवर्मा चढ़ि गयऊ।
जीति भोज थक्किय हिति दयऊ ॥

यह १४६ वां श्लोक है। शङ्करवर्मा शक ८१२ से ८२९ तक काश्मीर का राजा था। फिर भी राजतरङ्गिणी के ७ वें तरङ्ग में एक भोजराज का नाम आया है; जो राजा अनन्त देव का समसामयिक ठहरता है। यथा—

---

* ठक्कर-ठाकुर।

"मालवाधिपतिर्भोजः प्रहितैः स्वर्णसञ्चयैः।
अकारयच्चेनकुण्डयोजनं कपटेश्वरे॥"
अर्थात्—कपटेश्वरमहं पहि ढिग, हाटक राशि पठाय।
कुण्ड करायउ भोज नृप, मालव मेदिनिराय॥

यह १६० वां श्लोक है। राजा अनन्तदेव शक ६५५ से १००८ तक कश्मीर का राजा था। इन से व्यतिरिक्त और भी 'भोज' यह नाम देखो; राजतरङ्गिणी ७ वें तरङ्ग के १४६५, आठवें तरङ्ग के २४७, ३५ और ३९५ इन श्लोकों में आया है।

उज्जैन के ज्योतिषियों ने हण्टर साहब को वहां के प्राचीन ज्योतिषियों के समय का जो निघण्ट पत्र दिया है, उस की तालिका उठा के यहां लिखी जाती है। इस में भी भोजराज के जीवन के समय का निर्देश है।

वराहमिहिर	१२२ शक में हुए
द्वितीय वराह मिहिर	४२७ "
ब्रह्म गुप्त	५५० "
मुञ्जाल	८५४ "
भट्टोत्पल	८६० "
श्वेतोत्पल	९३९ "
वरुणभट्ट	९६२ "
भोजराज	९६४ " *
भास्कर	१०७२ "
कल्याणचन्द्र	११०१ "

ऊपर जितनी युक्ति और प्रमाण दरसाये गये उन के अधिकांश से यही प्रकट होता है कि उज्जैन राज्यवर्त्ती धारापुरी के अधीश भोजराज शक ९०० के अनन्तर और १००० शक के बीच में वर्तमान थे।

न केवल भोजराज के समय निरूपण में वरन उन की निवासभूमि के निर्णय में भी गोलमाल है प्राचीन इतिहास जाननेवालों ने राजा भोज को कहीं कर्णाटक का, कहीं मालवे का, कहीं उज्जैन का और कहीं धारापुरी का राजा कह के निर्देश किया है। उन वस्तियों में से उज्जैनी और धारा ये ... मालव देश की मुख्य नगरी ठहरती हैं। अतः मालव आदि तीन के ... ने भी मानना भ्रम नहीं होता है परन्तु कर्णाट देश का सम्बन्ध

* [illegible]

यद्यपि मालव में नहीं हो सकता। इसलिये भ्रम मार कई भोज मानने हते हैं। किञ्च हिन्दुस्तान में नाना नगरों के भोजपुर और भोजकट इत्यादि प्रसिद्ध नामों के सुनतेही अदबदा के उन के शब्दार्थ पर अर्थात् भोज के रहने का पुर भोजपुर, भोज के रहने का कटरा भोजकट इत्यादि अर्थ पर ध्यान जाता और प्रतीति होती है कि अवश्य ये नाम भोज ही को उपलक्षित कराते हैं। इस से भी द्योतित होता है कि सच मुच भोज कई हुए हैं।

भोज की कहानी से जाना जाता है कि भोजराज के चाचा राजा मुंज ने दैवज्ञों के मुख से सुना कि यह बड़ा सौभाग्यशाली होनहार है। तिस की टीस और जलन से उस ने चाहा कि इसे गुप्त में मरवाडालें। यह दुष्ट अभिसन्धि अपने मित्र वत्सराज को जो कि बङ्गाल का राजा था बुला के सुनाया और वध सिद्ध्यर्थ उस के हाथ में भोज को दे दिया। भोज को इस कपट का भेद खुल गया सो इन ने वत्सराज से यह श्लोक कहा—

"एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यच्च गच्छति॥"

अर्थात्—सुहृद धर्म इक मुहृद सहाय। और सकल तनुसङ्ग विलाय॥

धर्म ही एक मात्र मित्र है। यह परलोक में भी साथ देता है। न्यारी सब वस्तु देह के छूटने के सङ्गही छूट जाती हैं

इस श्लोक के सुनने और उस का अर्थ गुनने से वत्सराज ने धर्म चेता और भोज के वध से निवृत्त हो के उस से क्षमा माँगी। तदुपरान्त राजा मुञ्ज की समझौती के लिये भोज के शिर सरीखा एक कृत्रिम मुण्ड उसे लेजा के दिखलाया। उस के देखने से मुञ्ज को भोज का चेत आया तब उस ने वत्सराज से पूछा कि शिर काटे जाने के पूर्व कुमार भोज ने तुम से कुछ कहा सुना तो नहीं? वत्सराज ने उत्तर दिया कि नहीं; कुछ नहीं कहा। केवल एक चीठी लिख के आप के पास पहुँचाने के लिये मेरे हाथ में दी। इतना कह के वत्सराज ने चीठी निकाल के मुञ्ज के हाथ में थम्हाई। राजा मुञ्ज ने उसे खोल के बांचा तो उस में यह श्लोक लिखा देखा—

१ "मान्धाताति महीपतिः कृतयुगेऽलङ्कारभूतोगतः
२ सेतुर्येनमहोदधौ विरचितः क्वासौ दशास्यान्तकः।
३ अन्येचापि युधिष्ठिरप्रभृतयो यातादिवंभूपते!
नैकेनापि समंगता वसुमती मन्ये त्वयायास्यति"॥

लगादी है, भोजराज के सम सामयिक न थे । इस बात की विवेचना उन के निज २ वर्णन में मैं कर चुका हूं । बूझ पड़ता है कि ये लोग वृद्ध भोजराज की सभा में थे । भोजप्रबन्धकार ने नाम की समानता से धोखा खा इन्हें अर्वाचीन भोजराज के सभासद् कह के लिख दिया होगा। कालिदास के महापद्य के श्लोक के आरम्भ में लिखा मिलता है कि शंकर नाम कवि ने उन्हें कर्णाट के राजा भोज की सभा में पहुंचाया । किसी २ ग्रन्थ में तारेन्द्र की सन्ती नरेन्द्र है और दूसरे ग्रन्थ में कविराज शब्द के पलटे याचिराज ऐसा लिखा मिलता है। परन्तु कविराजकृत 'राघव पाण्डवीय' काव्य से ही प्रकट होता है कि कविराज भोज के सभासद् न थे । जिन जनों के नाम के साथ पुष्पिका नहीं दी गई है, वे नवीन भोजराज के किंवा वृद्ध भोजराज के सभासद थे इस की स्थिरता नहीं करते बनती है । सच पूछो तो वररुचि आदि नामांकित अपरापर विद्वान् लोग धराधीश भोजराज की सभा में सब उपस्थित रहे हों, यह बात संभावना से सर्वथा बाहिर है ।

शंकर, कर्पूर, विद्याविनोद और विनायक इन विद्वानों का नाम भोजप्रबन्ध को छोड़ दूसरी किसी पुस्तक में नहीं मिलता है । विद्याविनोद का नाम अमरकोषके टीकाकारों के बीच मिलता है और पद्यावली पुस्तक में भी कतिपय श्लोक उन के बनाये उठाये गये हैं । उन के रचयिता के परिचयार्थ उठाये श्लोक के नीचे " सर्वविद्याविनोदानाम् " अर्थात् सब विद्याओं के सुख चखनेवाले महाशय का बनाया यह श्लोक है, ऐसा लेखा दीखता है । उन श्लोकों में का एक श्लोक यह भी है—

" विश्लेषशीर्णादपि विपथपराङ्गीति भाजो रजन्यां
कियाभूमस्तदभिसरणे साहसं माधवस्याः ।
ध्वान्तं धाम्न्यापदति निभृतं राधयान्मप्रकाश
आसारपालिः पथिकाणकणारम्भरोधी व्यधायि ॥"

अर्थात्—

पिय लिखित अहि देखि डराती । कहत कहिय घर तब रगराती ॥
राधा ठिपि निसरी अधराती । लखि कनिमनि मग तु जगमगाती ॥
बरसि दिया हरि डगमगाती । निदि पर बर घर निसदि दुराती ॥

पद्यावली में शंकर के निर्मित भी कितने एक श्लोक उदाहृत हैं उन में का एक नीचे लिखा जाता है । यथा—

" यमुनापुलिने समुत्क्षिपन्नटवेशः कुसुमस्य कन्दुकम् ।
न पुनः सखि ! लोकयिष्यते, कपटाभीर किशोरचन्द्रमाः ॥"

अर्थात्—यमुनातट नटवेश अट, कपट अहीर किशोर।
कुसुम गेंद खेलत न पुनि, सखि लखि हौं चितचोर॥

किसी २ को कहते सुनता हूं कि ऊपर उक्त सभा पण्डितों और आश्रित कवियों के संग दामोदर मिश्र भी राजा भोज के आश्रित सभासद् थे और उन ने भोज की आज्ञानुसार हनुमन्नाटक जि महानाटक भी कहते हैं बनाया अथवा संकलित किया।

द्वितीय शिल्हण ।

भावप्रकाश नाम वैद्यक ग्रन्थ के रचयिता भावमिश्र अपने को शिल्ह मिश्र का पुत्र बतलाते हैं और लिखते हैं कि वृद्ध भोज और नवीन भो दोनों भिन्न २ न्यारे जन हैं। इस से व्यक्त होता है कि भावमिश्र के पि शिल्हण ही ने चाहे शान्तिशतक बनाया हो पर वे दोनों भोज के हो उपरान्त हुए हैं क्योंकि यदि वे भोज के पूर्ववर्त्ती होते तो भावप्रकाश भोज का नाम न होता।

कविराज ।

कविराज ने निज निर्मित ' राघवपाण्डवीय ' नामक काव्य में लिख है कि मैं राजा कामदेव का सभासद हूं और उन्हीं के उभाड़ने से मैं यह काव्य रचा है। कामदेव जयन्तीपुर के राजा थे और उन ने मध्यदे से वैदिक ब्राह्मणों को जिन्हों ने सोमयाग कर के सोमरस पान किय था बुलाया *। इसी पकड़ान की पकड़ से लोग कल्पना कर लेते हैं कि

---

* आनेतामध्यदेशात्प्रवचनविदुषां सोमपां ब्राह्मणाना-
मारोढ़ामर्त्यमूर्त्या सुरपतिसदसो मण्डनं मालवत्याः ।
जेताभूमेर्जयन्तीपुर पुरमथन श्रीपदाम्भोजभृङ्गः ।
सोऽपिच्मापालनेतुः स्वकुलकुलगिरिं योऽनुलेभेतयोभिः ॥"

(राघवपाण्डवीय १ सर्ग २५ श्लोक)

अर्थात् राजा कामदेव पूर्व में बड़े भारी २ तप किये हुए होंगे तभी तो ता शाधिनायक के कुलाचलतुल्य अत्युन्नतकुल में जन्मे और सब पृथ्वी जीत कर मालवदे श्न जयन्तीपुर में स्थापित शिवमूर्त्ति के श्रीयुत चरणारविन्द के भ्रमर समान चतुर वेदों के पठन पाठन में कुपटु, सोमपायी ब्राह्मणों को मध्यदेश (आर्यावर्त) । नरतन से स्वर्ग में जाके वे इन्द्र के सभासीन होंगे

कामदेव यह आदिशूर ही का दूसरा नाम रहा होगा क्योंकि उसी ने मध्य देश से वैदिक ब्राह्मणों को बुलवाया था * ऐसी गाथा है। मेरी समझ में यह कल्पना असङ्गत है क्योंकि ऊपर कह आये कि कामदेव की राजधानी जयन्तीपुर था। बंगाल के पूर्व में जो खसिया पहाड़ है, उस के पूर्वाञ्चल में ' जयन्तीपुर ' नाम नगर बसा है। उसे छोड़ भारतवर्षभर में अन्यत्र कहीं जयन्तीपुर नाम से प्रसिद्ध राजधानी का पता नहीं लगता है। आदिशूर के राज्यधाम से जयन्तीपुर बहुत दूर पर बसा है । अतः आदिशूर को जयन्तीपुर का राजा कहना वृथा है। किन्तु कविराज ने स्वरचित ग्रन्थ के प्रारम्भ में धारापुरी के राजा मुंज का नाम निर्देश करके सूचित किया है ‡ कि मुंज नाम का कोई राजा हो गया है। अनुसन्धान से निर्णय हो चुका है कि मुंज राजा आदिशूर से बहुत पीछे हुआ है । निदान इन युक्तियों से मैं कह सकता कि कविराज आदिशूर से पीछे हुए हैं पर वे किस समय में हुए हैं तिस का ठीक ठिकाना अब तक नहीं लगा सका।

कोई २ कहते हैं कि कविराज यह कवि का नाम नहीं है किन्तु उपाधि है † । यह बात भी पक्का एक मन में नहीं भिदती है क्योंकि कवि का नाम यदि कविराज छोड़ के और कुछ होता तो कहीं न कहीं अवश्य लिखा मिलता। पद्यावली में कविराजकृत यह एक श्लोक उठाया गया है—

"नन्दनन्दन पदारविन्दयोः स्यन्दमानमकरन्दबिन्दवः ।
सिन्धवः परमसौख्यसम्पदां नन्दयन्तु हृदयं ममानिशम् ॥"

अर्थात्

नँदनन्दन पद पंकज सुखभार। अतिशय सुख सम्पद रत्नाकर ॥
निशिवासर कणिका मकरन्दा। उपजाबहु मम हृदय अनन्दा ॥

इस के रचयिता के परिचय के लिये नीचे लिखा है 'कविराजमिश्रस्य' अर्थात् यह श्लोक कविराज का बनाया है। इस से भी प्रकट है कि कवि का नाम कविराज ही था।

सोमदेवभट्ट।

ये काश्मीर के महाराज अनन्तदेव के समय में हुए हैं। इन्हीं रचना की

* [illegible]

‡ "[illegible]
धारापति [illegible]" ॥
इस का अर्थ हो चुका है।

† [illegible]

कि सोमदेव भट्ट का समय उन की समझ में १२ वीं शताब्दी जंची है। वास्तव में सोमदेव भट्ट उस से भी वहुत पहिले अर्थात् खीष्टीय ११ शताब्दी से भी पहिले हुए हैं। सोमदेव और भोजदेव सम सामयिक हैं। यह बात भोजदेव के वर्णन में लिखी जा चुकी है।

वहुतेरे कहते हैं कि 'जातेजगतिवाल्मीके कविरित्यभिधीयते। कवी इतिततो व्यासे कवयस्त्वयि दाण्डिनि' अर्थात् वाल्मीकि जब भये। तब तक एकही कवि के होने से कवि शब्द का प्रयोग एकही वचन में किया जाता था। व्यास के होने पर दो कवि होने से द्विवचन में भी होने लगा पर अब जब से तुम दण्डी नाम कवि भये हो तब से तीन कवि हो चुकने के कारण उस का वहुवचन में भी प्रयोग होने लगा।

यह श्लोक कालिदास का कहा है* पर इस मत के विपरीत अनेक प्रमाण पाये जाते हैं जिनसे मुझे प्रतीति नहीं होती है कि यह श्लोक कालिदासका होगा। पक्षान्तर में यह श्लोक यदि कालिदासही का निर्मित स्वीकार किया जाय तो मानना पड़ेगा कि कालिदास से थोड़े दिन पहिले दण्डी भये होंगे क्योंकि इन ने निजकृत काव्यादर्श में मृच्छकटिक के 'लिम्पतीवतमोऽङ्गानि' इत्यादि प्रतीकवाले श्लोक को उठाया है। शूद्रक के समय निरूपण प्रकरण में मैं विस्तार से दर्सा चुका हूं कि मृच्छकटिक का रचयिता शूद्रकराजा विक्रमादित्य के तनिक पहिले हुआ।

दण्डी यह व्यक्ति नाम नहीं है किन्तु संन्यासाश्रम में दण्ड धारण के उपलक्ष से दण्डी यह उपाधि है।

दाण्डिकृत ग्रन्थों के नाम, यथा-काव्यादर्श, दशकुमारचरित, छन्दोविचिति † और कलापरिच्छेद।

---

* देखो शब्दकल्पद्रुम प्रथम खण्ड दण्डी शब्द पर।

† "शिक्षाकल्पोव्याकरणं निरुक्तं ज्योतिषां गणः।
छन्दोविचितिरित्येतैः षडङ्गो वेदउच्यते ॥"
(इत्यमरभरतौ)

अर्थात्—शिक्षा कल्प रु व्यकरण, ज्योतिष छन्द निरुक्त।
यहैं छयो ये वेद के, अङ्गमहा मति उक्त ॥

देखो शब्द कल्पद्रुम वेदाङ्ग शब्द पर। वैदिक छन्दोग्रन्थ में मालिनी छन्द है किंवा … है। देखो १८७४ सन की तत्त्वबोधिनी पत्रिका का २६४ पृष्ठ। वा पुराणों में मालिनी छन्द मिलता है।

आर्य क्षेमीश्वर।

इन ने चण्ड कौशिक नाम प्रसिद्ध नाटक रचा है। यह नाटक श्रीयुत
गन्मोहन तर्कालङ्कारकृत तिलक सहित कलकत्ते के काव्यप्रकाश नाम
पे के यन्त्र में संवत् १९२४ में छपा। भूमिका में तर्कालङ्कार महाशय ने
नुमान कर के लिखा है कि यह नाटक संवत् ५२५ से संवत् १५२
क के भीतर किसी न किसी समय बना होगा क्योंकि साहित्य दर्पण
ो छोड़ और किसी पुराने अलंकार ग्रन्थ में इस का नाम नहीं मिलत
। तर्कालंकार महाशय का अनुमान असंभाव्य नहीं है पर उन ने मिति
नेर्द्धारित कर के निर्देश नहीं की अतः इस कवि के समयनिरूपण में मैं
पनी मोटी बुद्धि की पहुंच भर दौड़ मारता हूं।

इस नाटक में मङ्गलपद्य पाठ के अनन्तर सूत्रधार बोलता है कि म
हीपाल देव की आज्ञानुसार इस नाटक का फाटक खोलता हूं। इस
स्थल पर विवेचना करना चाहिये कि महीपाल देव कौन थे? और कहां
न की राजधानी थी? इस प्रश्न का सुसंगत उत्तर देने में बंगाल के
ुराने इतिहास की सहायता लेनी चाहिये। उक्त इतिहास में स्पष्ट लिखा
है कि सेनवंशी राजाओं के पहिले पालवंशी राजा लोग बंगाल के प्र
थे। उन्हीं पालवंशियों में महीपाल नामक एक विख्यात राजा हो गए
है। आजतक उस के नाम की एक दीघी दीनाजपुर के प्रान्त में प्रसिद्ध
है। उस से अनुमान होता है कि इसी महीपाल राजा के समय में अथवा
उस के कुछ पीछे चल के इस नाटक की रचना भई होगी। ये स्वतन्त्र
राजा थे और इन ने कर्णाट आदि देश जीते थे, यह बात नीचे लिखे
श्लोक से प्रकट होती है। यथा--

> " यः संश्रित्य प्रकृतिगहनामार्यचाणक्यनीतिं
> जित्वा नन्दान् कुसुमनगरं चन्द्रगुप्तो जिगाय।
> कर्णाटत्वं ध्रुवमुपगतानद्य तानेव हन्तुं
> दोर्दर्पाढ्यः स पुनरभवच्छ्रीमहीपालदेवः॥"

अर्थात्—प्रकृति गूढ़ चाणक बुधनीती। पकरि नन्द बधि समरहिं जीती
चन्द्रगुप्त नृप राज्य सु कियउ। कहि महिपाल देव बन भयउ
नन्दउभौ कर्णाटक जनमे। भुजबल निरत हन पुनि इन में

कवि ने नाटक की समाप्ति में अपने को कार्तिकेय नाम ि

का समावेश बतलाता है * संभव है कि राजा कार्त्तिकेय महीपालदेव का वंशज हो। इस विवेचना से यह बात प्रतीत होती है कि जिस क्रम से मैं प्रस्तुत पुस्तक में कवियों का समय दर्शाता आता हूं उस के अनुसार से चण्डकौशिक के कवि काव्यप्रकाश के कर्त्ता मम्मटभट्ट और दशरूप के रचयिता धनञ्जय से पीछे उत्पन्न हुए हैं। अतः साहित्य शास्त्र के उन दोनों ग्रन्थों में इन के नाटक का नाम नहीं मिल सकता है।

वल्लालसेन।

आदिशूर का वंश निर्वंश होजाने पीछे सेनवंशी राजाओं ने गौड़ देश का राजसिंहासन अधिकार कर लिया। उन्हीं की वंशावली में † विजय सेन का पुत्र वल्लालसेन हुआ; जिस ने ब्राह्मणों और कायस्थों के बीच कुलीनता का विचार चलाया।

इन के जन्म के संवत् के निरूपण के विषय में नाना मत हैं। घटकों के बनाये पुराने पद्यों के अनुसार वल्लालसेन का जन्म शक ११२४ आता है। यथा—

---

* "येनादित्यप्रयोगं घनपुलकभृता नाटकस्याप्यदृष्टाद्
वस्त्रालङ्कार हेम्नां प्रतिदिनमकृशा राशयः संप्रदत्ताः।
तस्य क्षत्रप्रसूते र्भ्रमतु जगदिदं कार्त्तिकेयस्य कीर्त्तिः
पारेक्षीराब्धिसिन्धोरपि कवियशसामार्द्दमग्रेसरेण॥"

प्रथम चरण में कुछ अशुद्धि है इस कारण उसने चरण का अर्थ नहीं किया। शेष तीनों चरणों का अर्थ यह है—जिस ने नित्य २ बहुत से वस्त्र, भूषण और सुवर्णों को दान कीं उस क्षत्रिय कार्त्तिकेय की कीर्त्ति कवि के यश को आगे किये हुए दुग्ध के क्षीरसागर के भी पार इस संसार में भ्रमण करे।

इस से व्यक्त होता है कि ये कार्त्तिकेय क्षत्रिय थे। पालवंशी होने से क्षत्रियता में व्याघात नहीं समझना चाहिये क्योंकि पहले क्षत्रियों में भी सेन और पाल इत्यादि उपाधि होती थी।

† बङ्गाली बोली की कहनूत का चलथा—

आदिशूरकरमूलमिटेपर सेनवंस डट टटका।
विस्वक्सेनककिलज सुतनृपवल्लालसेनचटका॥

ने अपनी एक कविता में कहा है कि विजयसेन चन्द्रवंशी क्षत्रिय था। कि वल्लालसेन उसी विजय सेन के पुत्र हुए थे।

" वेद युग्मधराहीणे शाके सिंहस्थ भास्करे ।
मिश्रसेनस्यपुत्रोऽभूत् श्रीलवल्लालभूपतिः ॥"

अर्थात्—सिंहराशिगतसूर्ये शाक, ग्यारह सौ चौबीस ।
मिश्रसेन के सुवन भे, श्रीवल्लाल महीश ॥

परन्तु मैं इस बात पर विश्वास नहीं ला सकता । तिस का पहिला
हेतु यह है कि घटकों*ही के न्यारे पुराने पद्य में लिखा है कि गौड़देश में
९५४ शाके में कनौज से ब्राह्मण लोग आये थे । यथा—

"वेदबन्द्राङ्के शाके च गौड़े विप्राः समागताः "

अर्थात्—बारह सौ पर चौदह शाके । गौड़ माहिं द्विज पहुंचे आके ॥
निःसन्देह बल्लाल सेन के जन्म के बहुत दिन पहिले ब्राह्मण लोग बंगाल
में आये थे । बंगभाषा में जो घटकों के पद्य प्रचलित हैं, उन में लिखा है
शाक ९५४ में ब्राह्मण लोग आये । बंगला पद्य का अनुवाद—

सुनहु ध्यान दे के सब लोग । जब नवशत शाक संयत भोग ।
बीत चुकयो ताके पर चार । कनौज से ब्राह्मण पगुधार ॥
चार और सप्तमि गुरुवार । आके पहुंचे गौड़ मझार ॥

क्षितिशवंशावली चरित नाम पुस्तक में ब्राह्मणों के आगमन का समय
शक १००० बतलाया है । अविश्वास का दूसरा हेतु यह है कि 'समयप्र-
काश' नाम पुस्तक में लिखा है कि बल्लालसेन ने शक १०९१ में † दानसाग
नामक ग्रन्थ बनाया । यथा—

" निखिलनृपचक्रतिलक श्रीवल्लालसेनदेवेन ।
पूर्णे शशिनवदशमिते शकाब्दे दानसागरो रचितः ॥"

अर्थात्—नव बारह ग्यारह सौ शाके । सकलनृपति शिरशेखर बांके ॥
श्रीवल्लालसेन महराजा । दानसागर ग्रन्थ बनाया ॥

यों अलग २ लोगों ने बल्लाल के समय के विषय में भिन्न २ कल्पना
की है । रहस्यसन्दर्भ पत्र के सम्पादक महाशय ने रहस्यसन्दर्भ के तृतीय

---

* [illegible]

† [illegible]

पर्व के २८ खण्ड में 'सेन राजाओं की वंशावली' शीर्षक जो प्रस्ताव लिख है; उस में देशी और विदेशी ग्रन्थकारों के नाना ग्रन्थों की सहायता से जो समय निरूपण किया है, यहां मैं उसी का सहारा लेता हूं। उस में लिखा है, कि शक ६८८ अर्थात् १०६६ खीष्टाब्द में राजावल्लाल राज्यपद पर आरूढ़ हुए।

बल्लालसेन कृत कोई अलग काव्य नहीं मिलता पर इन की बनाई प्रस्फुट कविता मिलती है उन के पढ़ने से जान जाता है कि ये एक अच्छे कवि थे। बल्लाल सेन ने अपने बेटे लक्ष्मणसेन के पास पत्र में जो श्लोक लिखा था वह कविभट्ट कृत पद्यसंग्रह में संगृहीत है। यथा—

"सुधांशोर्जातेयं कथमपि कलंकस्य कणिका
विधातुर्दोषोयं न च गुणनिधेस्तस्य किमपि।
स किं नात्रे: पुत्रो न किमु हरचूड़ार्चनमणि
र्न वा हन्ति ध्वान्तं जगदुपरि किं वा न वसति॥"

अर्थात्—

केहु विधि विधुहि लाग लिमलीका। विधिलिम सुकिछुन सुगुण निधीका
अत्रिसुवन त्रिभुवन शिर नीका। अजहु तिमिर हर हरशिरटीका।

...नसागर बल्लालसेन का रचित है सो पूर्व में बतला चुके।

लक्ष्मणसेन।

पूर्वोक्त रहस्यसन्दर्भ के मत से लक्ष्मणसेन शक १०२३ वा ११० खीष्टाब्द में सिंहासनासीन हुए। ये बल्लालसेन के बेटे थे। उन ने अपने पिता के पास कोई चीठी पठाई थी। उस में कुछ संस्कृत श्लोक रचना करके लिखे थे। उन के पढ़ने से इन की कविता शक्ति की परख मिलती है। यथा—

शैत्यं नामगुणस्तवैव तदनुस्वाभाविकी स्वच्छता।
किं ब्रूमः शुचितां भवन्त्यशुचयः स्पर्शेन यस्यापरे॥
किं चातः परमं तयस्तुतिपदं त्वं जीवनं देहिनां
त्वञ्चेन्नीचपथेन गच्छसि पयः कस्त्वां निरोद्धुं क्षमः*॥

* कहते हैं कि बल्लालसेन किसी नीच जाति की कन्या पर आसक्त हुए थे, कि...

इन के अतिरिक्त 'अभिधानरत्नमाला' और 'कविरहस्य' (जिसमें प्रत्येक धातुओं के अलग २ अर्थ और उदाहरण लिखे हैं) इत्यादि और भी कई एक ग्रन्थ इन के बनाये हैं। धर्मशास्त्र विषयक ब्राह्मणसर्वस्व न्यायसर्वस्व और पण्डितसर्वस्व आदि ग्रन्थ भी इन के रचित हैं।

मल्लिनाथ।

महाकाव्यों की टीका लिखने से ये प्रख्यात पुरुष हुए हैं। इन ने अपनी बनाई टीकाओं में हलायुध के और मेदिनीकोष के बहुत से प्रमाण दिये हैं।

उमापतिधर।

ये महाराज लक्ष्मणसेन के प्रधान मन्त्री थे। यह बात श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध के ३२ वें अध्याय के ८ वें श्लोक की भावार्थदीपिका वैष्णवतोषिणी टीका से विदित होती है। "श्रीजयदेव सहचरेण महाराजलक्ष्मणसेन मन्त्रिवरेणोमापतिधरेण" इत्यादि अर्थात्—उमापति श्रीजयदेवजी के सखा और महाराज लक्ष्मणसेन के प्रधानामात्य थे इत्यादि

जयदेवकृत गीतगोविन्द के एक श्लोक में इन का नाम मिलने से जाना जाता है कि ये जयदेव के समसामयिक थे। यथा—

"वाचः पल्लवत्युमापतिधरः" इत्यादि अर्थात् 'विबुध उमापति निपुण, वचनरचन विस्तार॥'

और गीतगोविन्द पर जो 'सर्वाङ्गसुन्दरी' टीका बनी है, वहां या 'पल्लवयत्युमापति धरः' इत्यादि प्रतीकवाले श्लोक की व्याख्या में पाई जाती है कि उमापतिधर ये "सान्धिविग्रहिक" अर्थात् लड़ाई झगड़े और मेल मिलाप की मन्त्रणा के अधिकारी राजमन्त्री थे। इस लेख की सूचना से जान ले सकते हैं कि ये किस राजा के प्रधान मन्त्री थे।

इन कवि का बनाया कोई प्रसिद्ध ग्रन्थ हम लोगों को मिला नहीं परन्तु वैष्णव तोषिणी और पद्यावली में इन के बनाये कुछ श्लोक उठाये हैं। उन के पढ़ने से बूझ पड़ता है कि ये उत्तम कवि थे।

निम्न लिखित श्लोक वैष्णवतोषिणी में उठाया है—

" भ्रूवल्लीचलनैः कयापि नयनोन्मेषैः कयापिस्मित
ज्योत्स्नाविस्फुरितैःकयापि निभृतं सम्भावितस्याध्वनि ।
गर्वोद्भेदकृतावहेल विनयश्रीभाजि राधानने
सातङ्कानुनय जयन्ति पतिताः कंसद्विषो दृष्टयः॥"

अर्थात्—

भौंह भ्रमा कोउ नैन की सैननि कोउ कोऊ मुसुकयानि जुन्हाइ सों ।
मारग में सदुराव समादर भाव जनावत आलि कन्हाइ सों ॥
राधिकाचाँ कुहाँइ परी झिझकार करै मुख ओप अन्हाइ सो ।
भेचक ताकनि कान्ह की मान मनावनि पैर्ता पै नाहि पिन्हाइ सो ॥

और पद्यावली में उठाया श्लोक यथा—

"तिर्यक्कन्धर कीलदेशमिलित धोत्रायतंसस्फुर-
द्बर्होत्तम्भितकेशपाशमनुजुभ्रू वल्लरी विभ्रमम् ।
गुञ्जद्वेणु निवेशिताधरपुटं साकूत राधानन
न्यस्तामीलितदृष्टि गोपवपुषो विष्णोर्मुखं पातु वः ॥"

अर्थात्—

तिरछि ग्रीव तट कुण्डल कीला । अंटकियहि गुँथि कच चटकीला ॥
मिचकि पलक भृकुटिहि मटकाई । राधामुखतकि मुरलि बजाई ॥
ऐसो गोपवेशमाधव को । वदन करै पालनतुम सब को ॥

कलाप व्याकरण की पञ्जिका में प्रमाण के लिये उमापति कृत जिन कारिकाओं का उपन्यास किया है, वे कारिका इन्हीं उपमापति की नाईं हैं या दूसरे किसी की तिस का निश्चय नहीं होता ।

रामपुरबोलिया के समीपवर्ती विजयनगर की पोखरी के पक्के बंधे घाट से निकले पत्थर आज एसियाटिकसोसाइटी में धरे हैं । उन में से एक शिला में 'उमापतिधर' के बनाये ३६ श्लोक खुदे हैं । उन में राजा विजय सेन की वंशावली का वर्णन है । आईन अकबरी से जाहिर होता है कि विजयसेन ही का दस्म शतकसेन है । यह राजा जाति का कायस्थ था ।

शरण ।

ये भी जयदेव के समसामयिक या कुछ पूर्ववर्ती रहे होंगे क्योंकि जयदेव कृत गीतगोविन्द के प्रारम्भ में इन का भी नाम मिलता है । यथा—

"शरणःश्लाघ्यो दुरुहद्रुते"

अर्थात्—धनि धनि प्रतिभा शरण की, जाकी बुद्धि सुजान ।

इन में काव्यादि कोई बनाये या नहीं सो हम नहीं जानते । हां पद्यावली में इन के रचित कुछ श्लोक संगृहीत हैं । उन में से एक उद्धृत करता हूं ।

"कामं कामयते न केलिनलिनीं नामोदने कौमुदीं
निस्यन्दैर्नसमीहते मृगदृशामालापलीलामपि।
सीदन्नेव निशासु निःसहतनुर्भोगाभिलाषा लसैः
स्त्रैस्ताम्यति चेतसि व्रजवधूमाधाय मुग्धो हरिः"

अर्थात्—व्रजवनिता चित में धस जब तें। मुग्ध भयो मनमोहन तब तें॥
चाहत मिलन निशा सब जागत। येसम्भार कुम्हिलात न भागत॥
ललना ललित वयन न सुहाई। मानत चैन न जोर जुन्हाई॥
केलिकमलिनी करनहिं लावै। पीर शरीर पयो अरसावै॥

गोवर्द्धनाचार्य।

ये भी उमापतिधर आदि की नाईं श्रीजयदेव के समसामयिक
क्योंकि गीतगोविन्द में इन का भी नाम आया है। यथा—

"शृङ्गारोत्तरसत्प्रमेय रचनैराचार्य गोवर्द्धनस्पर्द्धी कोऽपि न विश्रुतः"
इत्यादि।

अर्थात्—अर्थ आदि रसघटित अति, उत्तम कविता माहि।
गोवर्द्धन आचार्य की, उपमा दीजे काहि॥

इन ने एक कवितापुस्तक बनाई है। उस में सात सौ आर्या
निबद्ध होने से उस पुस्तक का नाम आर्यासप्तशती है। उस में भवभू
आदि कवियों की बड़ाई में बहुत से श्लोक कहे हैं। पद्यावली में भी
के रचित बहुत से श्लोक संगृहीत हैं। यथा—

सौजन्येन वशीकृता वयमतस्त्वां किञ्चिदाचक्ष्महे
कालिन्दीं यदियासि सुन्दरिपुनर्मागाः कदम्बाटवीम्।
कश्चित्तत्रनितान्त निर्मलतमस्तोमोऽस्तियस्मिन्मनाग्
लग्नेलोचनसीम्निनीरपलदृशः पश्यन्ति पत्युर्गृहम्॥"

अर्थात्

किछु कहौं तब ज्वै सुघराइ जायमुन नोनि ननीपवनीहि हां।
तमघनो चिकनो कोउ कुं दुको तियहगन्त न, कन्त कुटी सुभै॥

गोवर्द्धनाचार्य भी सेनवंशीय किसी राजा की सभा के पण्डित
क्योंकि इन ने आर्या सप्तशती में कहा है।

"सकलकलाः कल्पयितुं प्रभुः प्रबन्धस्य कुमुद बन्धोश्च।
... राका प्रदोषश्च॥"

सेन कुल तिलक नृप, काव्यकला भरपूर।
कौन कौन बिनु पूनि मो, सांझ कला कर पूर॥

आर्यासप्तशती में इन ने अपने पिता का 'नीलाम्बर' यह नाम निर्देश किया है। यथा—

"यं गणयन्तिगुरोरनु यस्यास्तेऽधर्मकर्म सङ्कुचितम्।
कविमहमुशनसमिव तं तातं नीलाम्बरं वन्दे ॥"

अर्थात्—जो नित्य दूर रहते अथते गुरू के
नीचे कवित्व गिनली जिनकी सराहों।
नीलाम्बराख्य कवि, भार्गव के सरीखे
मेरे पिता अहहिं तत्पदपद्म वन्दे।

इन के शिष्यों में से एक का नाम उदयनाचार्य था। अनुमान करना चाहिये कि येही उदयनाचार्य कुसुमाञ्जलि के रचयिता हैं या दूसरे कोई।

"उदयन बलभद्राभ्यां सप्तशती शिष्यसोदराभ्यां नः।
द्यौरिव रविचन्द्राभ्यां प्रकाशिता निर्मलीकृत्य"

अर्थ यह है—

उदयन नामक शिष्य हमारे। हैं बलभद्र सहोदर प्यारे॥
शोधिडमय सप्तशति उद्योती। करत यथा रवि शशि दिन ज्योती॥

शब्दकल्पद्रुम के द्वितीय खण्ड में न्याय शब्द पर उदयनाचार्य को वाचस्पति मिश्र का शिष्य कह के लिखा है।

धोयी।

जयदेव गीतगोविन्द के आरम्भ में "श्रुतिधरोधोयी कविक्ष्मापतिः" अर्थात्—धोयीकविपति सुनवहीं, यातें करत सुख्याम॥' ऐसा कहके इन कवि की विशेष प्रशंसा करते हैं। उस से सूचित होता है कि ये जयदेव के समसामयिक अथवा उन से कुछ पूर्व रहे होंगे।

इन ने 'पवनदूत' काव्य बनाया है। मैं उस के आरम्भ के कुछ श्लोक यहां पर उठाता हूं। उन के पढ़ने से बूझ पड़ेगा कि काव्य का वर्णनीय विषय क्या है।

"अस्ति श्रीमत्यखिलककुभाकुन्दरैचन्दनाद्रौ
गन्धर्वाणां कनककनकगर्णनाम रम्यो निवासः।
हेमैर्लीलाभवनशिखरै रम्यं क्लाडैर्विडि
धेते शाखानगरगणनां यः पुराणां पुरस्य ॥ १ ॥
तत्रास्येका कुवलयवती नाम गन्धर्वकन्या

गन्धे जैत्रं मुकुटकुसुमैरञ्चितं या मनोज्ञं ।
दृष्टा देवं भुवनविजये सदमणं शोणिमानं
पालासयः कुसुमधनुषः किंविधेयो वभूव ॥ २ ॥
बाल्यादालिष्यपि मनसिजे मानमिच्छत्यपर्णा
पाण्डुच्छामा कतिचिदनपत्कातरा वासराणि ।
गन्तुं देशान्तरमथ मधावन्यथैव प्रवृत्तं
गाढोत्कण्ठा मलयपवनं सम्प्रणामं ययाचे ॥ ३ ॥"

अर्थात्—

अर्थात्—चन्दन गिरिपर कनकपुरि, शोभाधामल ग्राम ।
गन्धर्वेन्द्र की वसति है, महिमण्डल अभिराम ॥
जिहि के केलि निकेत सुरेरे । पुरन्दघटित दिपदेहि दरेरे ॥
देखि लगत अनु शालानगरी । अमरावति की क्षितिपर बगरी ॥
तहां राजकन्या कुवलयवति । कुसुमहु चाहि सुकुमार अंगि अति ॥
मनहु मदन सायक जयदायक । दिग्जय लखेसि लखन नरनायक ॥
सपदि कामवश वाम, भई सारिहु से खाज वस ।
किंतु न कहेसि तनु छाम, कातर नित पीरी परी ।
सुखद लगत थी जो दखिनाई । पवन लगन लगि अब दुखदाई ॥
कुवलयवति जानेसि मधु पवना । चाहत कीन्ह दिगन्तर गवना ॥
अति उत्कण्ठित तिहि सप्रणामा । लागी करन निवेदन वामा ॥

श्रीजयदेव ।

ये महाराज लक्ष्मण सेन के तुल्य कालिक थे । इस का पक्का प्रमाण पहिले ही उमापतिधर के प्रसंग में लिख आये हैं । चैतन्य चन्द्रोदय नाटक पर जो अंगरेजी में भूमिका लिखी गई है; उस में इस का समय अटकल से खीष्टीय आठवीं शताब्दी में निर्द्धारित किया है; पर यह पक्ष प्रामाणिक नहीं है ।

जयदेव का निवास 'केन्दुविल्व' ग्राम में था । आज काल अजय

ने केन्दुबिल्व कहा है *। 'केंदुली' गांव में आज लों जयदेव के नाम से प्रतिवर्ष पूस मास में वैष्णवों का मेला लगता है।

जयदेव विरचित गीतगोविन्द की कविता की माधुरी के आस्वादन से मोहित हो सभी इन्हें अनुपम कवि गुनावन करते हैं। जयदेव के ऊपर बङ्गालवालों की प्रीति और प्रतीति जगत् भर में उजागर है और महाराष्ट्री बोली में 'भक्त विजय' नाम एक पुस्तक में जयदेव जी को व्यास देव का अवतार कहा है।

जयदेव निजमुख से अपनी सुन्दरकविता की प्रशंसा में जो कहते हैं

"शृणुतसुधामधुरं विबुधाविबुधालयतोऽपि दुरापम्"

अर्थात्—हे विज्ञजनो मेरी अमृत के तुल्य कविता सुनो यह स्वर्ग में भी दुर्लभ है। यह उन का सीटना नहीं है किन्तु सत्य कथन है।

एक और भी जयदेव हुए हैं, जिन का उपमान 'पक्षधरमिश्र' और पदवी 'पीयूष वर्ष †' थी। चन्द्रालोक और प्रसन्नराघव के रचयिता जयदेव के पिता का नाम 'महादेव' और माता के नाम 'सुमित्रा' था। ये कौण्डिन्य गोत्र में उत्पन्न थे ×। इन से रघुनाथशिरोमणि ने शास्त्रार्थ किया था। यथा—

"अभाग्यं गौड़देशस्य काणभट्टः शिरोमणिः"

अर्थात्—गौड़देश कर भाग निदाना (अन्त)।
भट्ट शिरोमणि जहवां काना॥

---

* वर्णितं जयदेवकेन हरेरिदं प्रवणेन।
केन्दुबिल्वसमुद्रसम्भवरोहिणीरमणेन॥

(गीतगोविन्द तृतीय सर्ग)

अर्थात्—केंदुलि सागर शशि जयदेव। यह बरनेउ हरि सुमिरन टेव॥

* यहाँ इतने पर भी विलसन् महाशय कहते हैं कि जयदेव पण्डित कालीदास से भी पहिले कलिंग देश में हो गये हैं।

† रघुनाथशिरोमणि पक्षधरमिश्र के शिष्य थे। उन के शिष्य मथुरानाथ तर्कवागीश ने चमामणि दीधिति पर टीका बनाई। उन के शिष्य भवानन्दसिद्धान्तवागीश ने दीधिति पर टीका बनाई। भवानन्द के दो शिष्य थे। एक जगदीश तर्कालंकार दूसरे गदाधरभट्टाचार्य। दोनों शिष्यों ने दीधिति पर बहुत ह टीका बनाई है। देखो शब्द कल्पद्रुम न्याय शब्द पर।

× इस विषय में बम्बई के छपी जयदेव की भूमिका देखो।

अर्थात्

भाष्यकारमत जानि भलि, भांति विवरण हुतासु ॥
समुझि यथामति करत हौं, गीता अर्थ प्रकाशु ॥

इस से सिद्ध होता है कि ये शंकराचार्य से अर्वाचीन हैं।

श्रीमद्भागवत के तृतीय स्कन्ध के १२ वें अध्याय के दूसरे श्लोक की टीका में इन ने 'विष्णुस्वामी' का नामोल्लेख किया है। उस से प्रकट है कि ये वैष्णव सम्प्रदाय के चलानेवाले विख्यात विष्णुस्वामी के पश्चात् हुए हैं। विष्णुस्वामी खीष्टीय तेरहवीं शताब्दी के पूर्व में वर्त्तमान थे, पर विस्तार से उन के समय निरूपण प्रकरण में दर्साया जायगा। किन्तु श्रीमद्भागवत तृतीयस्कन्ध २३ अध्याय के तीसवें श्लोक की टीका में 'विश्वप्रकाश' नाम कोष का वचन और वीचर में कहीं २ दण्डी के रचित श्लोक उठाये हैं तिस से ये स्वामी उन ग्रन्थकर्त्ताओं से भी अर्वाचीन सिद्ध होते हैं *। विलसन् महाशय के छापे विष्णुपुराण ५ खण्ड के ३८१ पृष्ट में लिखा दीखता है कि श्रीधरस्वामी हिन्दुस्तान के पूर्विहा (पूर्व देश वासी) ब्राह्मण थे।

इन ने विष्णुपुराण, श्रीमद्भागवत और भगवद्गीता इन तीनों पर तिलक किये और 'व्रजविहार' नाम एक छोटी सी पोथी भी रची। व्रजविहार का मंगलाचरण यह है—

"गायन्तीनां गोपसीमन्तिनीनां स्फीताकाङ्क्षामक्षितोलक्ष्य मार्गम्।
विद्याकन्यामात्मवक्त्रारविन्दे कुर्वन्नव्याद्देवकीनन्दनो वः ॥"

अर्थात्—जब गोपीलोग श्रीकृष्ण से लगन लगा के ब्रह्मविद्याविषयक गीतगाती थीं; उस वेला उन गोपियों की सतृष्ण आंखों से श्रीकृष्ण पर ब्रह्मविद्यारूपी कन्या की गाढ़ी चाह झलकती थी। गोपियों के मुख से सुन २ कर आप भी श्रीकृष्ण अपने मुख से उन गीतों को गाते थे। उस समय ऐसा बोध होता था कि मानो घर करना चाहती ब्रह्मविद्यारूपी कन्या श्रीकृष्णचन्द्र के वदनारविन्दरूपी मन्दिर में वधू प्रवेश कर रही है। एतादृश श्रीकृष्णचन्द्र तुम्हारी रक्षा करें॥

---

* श्रीमद्भागवत १० म स्कन्ध ४१ अ० ४ थे श्लोक की टीका में 'हंसगुह्य' स्तोत्र का प्रमाण दिया है। कोई बतलाते हैं कि 'वाचारः...' इत्यादि प्रतीकवाला श्लोक श्रीधरस्वामी का श्रीमुखवचन है परन्तु यह ... में ११२ वां श्लोक लिखा मिलता है।

विल्वमङ्गल ठाकुर

दक्षिण में कृष्णवर्णा (कृष्णा) नदी के पश्चिम तीर किसी वसति में रहते
। * पहिले अति लम्पट थे । किसी दिन, दिन में इन के बाप का
द्ध था †। रात को घनघोर घटा उमड़ी थी। जल में बहती किसी
व को पकड़ के नदी पार कर गये और एक रस्सी के धोखे अजगर
प की पूंछ थाम्ह के उस के सहारे से अपनी आसक्ता प्यारी के कोठे
चढ़ गये। उस ने इन्हें वैसे आये देख बहुत भिड़का तब तो इन की
नदृष्टि उघड़ी और तत्क्षणात वैरागी हो गये। श्रीकृष्ण की क्रीड़ा
पय में कई पुस्तकें रचना करने से इन को लीलाशुक यह पदवी मिली
। वैष्णव महापुरुषों के मुख से सुनने में आता है कि इन की संस्कृत
त्थों किसी कविता पुस्तक के श्लोकों को साक्षात् मूर्तिमन्त श्रीकृष्ण-
द्र कान दे के सुना करते थे; अतएव उस पुस्तक का नाम कृष्णकर्णा-
। धरा गया। वैष्णवों के बीच इस पुस्तक का परम आदर है। सो जो
१ हो; इस पुस्तक के सब श्लोक सुनने में सचमुच अमृत के तुल्य
द्र हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभु सदा इस अमृत रस की माधुरी को चखा
ते थे। उस का मङ्गलाचरण श्लोक यह है—

चिन्तामणि + र्जयति सोमगिरिर्गुरुर्मे शिक्षागुरुश्च भगवान्शिखिपिच्छ-
लिः यत्पादकल्पतरु पल्लवशेखरेषु लीलास्वयंवररसंलभते जयश्रीः"

अर्थात्

पति सोमगिरि मम चिन्तामनि । सिखगुरु शिखिशिखण्डि शेखरधनि ।
सु चरण सुरतरु दलकोरे । ललकि जयश्री भरत अँकोरे ॥

---

* कृष्णा को हम हिन्दी कृष्णवेणा कहते हैं। यह दक्षिण में सह्याद्रि से निकलती है।
यह बात विष्णुपुराण द्वितीय अंश तृतीय अध्याय में ऐसी लिखा है—

"गोदावरी भीमरथी कृष्णवर्णादिकास्तथा
सह्यपादोद्भवानद्यः स्मृताः पाप भयापहा: ॥"

अर्थात्—गोदावरि अरु भीमरथि, कृष्णा आदि पुनीत।
सह्याचल पग धोवतीं, नदियां मल दल जीत ॥"

† माधवेन्द्र पुरी के दादागुरु [illegible] "भक्ति [illegible]" में [illegible]
[illegible] लिखी है।

+ कोई २ कहते हैं कि इन को [illegible] ([illegible]) का नाम चिन्तामणि था। [illegible]
[illegible] है।

ठाकुर बिल्वमंगल ने और भी एक छोटी सी पुस्तक रची है। उस नाम अपने नामानुसार बिल्वमंगल ही प्रचारित किया है। उस के आर का श्लोक यह है—

"यं वेद वेद विदपि प्रियमिन्दिरायास्तत्स्वामिनीरगहगर्भगृहो न धाव गोपाल बालललना वनमालिनं तं गोधूलिधूसर शरीरमरीरमस्ताः।

अर्थात्

जासु नाभि नीरज अभ्यन्तर। निगम निरत विधि बसत निरन्तर।
तउ जिहि कहं वह जानत नाहीं। सो बनवारी गुवारिन्ह माहीं।
गोखुर धूरि धूसरित गाता। श्रीपति केलि करत रँग राता।

बिल्वमङ्गल किस समय में हुए; यद्यपि इस का कहीं कुछ पता नहीं लगता तौ भी अनुमान से जाना जाता है कि शङ्कराचार्य से अद्वैत (माया वाद का विशेष प्रादुर्भाव होने पर दक्षिण देशवासी स्वामी रामानुज आ उस के विपक्ष खड़े हो चुके थे तत्पश्चात् ये उत्पन्न हुए हैं * पहिले शाङ्करमतानुयायी अद्वैतवादी थे। यह बात उन के निज रचित निम्न लिखित श्लोक से प्रकट होती है।

अद्वैत वीथीपथिकैरुपास्याः स्वानन्द सिंहासनलब्धदीक्षाः।
शठेनकेनापिवयं हठेनदासीकृतागोप वधूविटेन॥

अर्थात्

अद्वयमत पथपथिक सुसेवित। आत्मानन्द राज्य अभिषेकित॥
हम थे तिहिंकोउ शठ दै फन्दी। ग्वारि धींगरो हठि किय बन्दी॥

कृष्णकर्णामृत के आरम्भ वाले श्लोक में इन ने सोमगिरि को अपना गुरु कहके उल्लेख किया है और जगद्विदित है कि गिरि, पुरी इत्यादि उपाधि शङ्कराचार्य के साम्प्रदायिक संन्यासी शिष्यों की शाखा भेद की पहिचान के लिये चलाई गई हैं। इस का व्योरा लोग यों बतलाते हैं कि कलिकाल में संन्यास लेना धर्मशास्त्र से निषिद्ध था परन्तु शङ्कराचार्य ने उसे कलिकाल में विहित स्थापित किया † शङ्कराचार्य के पद्मपाद, हस्तामलक, मण्डन और तोटक ये चार मुख्य शिष्य थे। पद्मपाद ने दो शिष्य

* भक्तमाल में रामानुज के शिष्यों की परम्परा के बीच इन का नाम भी लिखा दोहा उस का उल्था यथा—

रामानुज के शिष्यन्हकी बीते पर पीढ़ी बहुतेरी।
शिष्य बिल्वमङ्गल जगतारण जनु रामानुज किय फेरी॥

† देखो १७२८ शक माघमास की ४२ संख्यक तत्त्वबोधिनीपत्रिका।

किये। उन में से एक की शिष्य शाखा की तीर्थ और दूसरे की आश्रम उपाधि हुई। ऐसेही हस्तामलक के दो शिष्यों की पृथक् २ दो शिष्य शाखाओं की वन और अरण्य ये दो उपाधि हुई। मण्डन के तीन शिष्य थे उन में से एक शिष्य शाखा की गिरि, दूसरी की पर्वत और तीसरे की सागर उपाधि हुई। ऐसेही तोटक के तीन शिष्यों की तीन शिष्य शाखा की पृथक् २ सरस्वती, भारती और पुरी ये तीन उपाधि हुई। विद्यारण्यस्वामी ने शङ्कर दिग्विजय में इन में से प्रत्येक का अलग २ लक्षण लिखा है और यह प्राणतोषणी * में भी लिखा मिलता है। परस्पर विभेदक दश लक्षणों के कारण ये जो संन्यासियों के दशदल हैं; उन सभों की एक साधारण संज्ञा दश नामी है। निदान इस विवृति से विवृत हो जाता है कि सोमगिरि के नाम के अन्त में गिरि उपाधि रहने के कारण ये दण्डी संन्यासी थे बिल्वमङ्गल ने उन्हीं से ज्ञान सिखा था।

जो पहिलेही से श्रीकृष्णचन्द्र जी के भजन का परम प्रेमी है वह शंकर अद्वैतवाद को सर्व श्रेष्ठ वा मोक्ष साधन माने यह बात कदापि संभव नहीं है। हां पहिले लोग अद्वैतवाद को अखण्ड मान विश्वास करते थे। यहां तक कि उन में से बहुतेरे विष्णु की भक्ति में तत्पर हो के भी अद्वैतवाद के खण्डन की युक्ति न सूझने से उसी पर आस्था रखते थे। उन के उदाहरण यथा श्रीधरस्वामी आदि हैं; परन्तु स्वामी रामानुज ने जब अद्वैतवाद पर सौ दूषणदेनेहारी शतदूषणी नामक पुस्तक लिखी तब लोगों की आंख खुल गई।

श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु ने भी संन्यास ले लिया था पर वे उस के पक्षपाती नहीं वरन इसी उपलक्ष से उन के उपासक लोग उन्हें कपट संन्यासी कहते हैं। उक्त महाप्रभु ने प्रभु नित्यानन्द के कहने से संन्यास का दण्ड त्याग भी दिया था। विशेष करके † अद्वैतवाद के वे कैसे कुछ विपक्ष थे; तिस का भेद चैतन्यचरितामृत मध्यखण्ड का षष्ठ परिच्छेद और प्रथम खण्ड का सप्तम परिच्छेद देखने से खुल जाता है। सार्वभौम भट्टाचार्य के साथ शास्त्रार्थ का षष्ठ परिच्छेद में और काशीवासी संन्या-

---

* कलकत्ते के पास खड़दहग्राम के निवासी प्राणकृष्ण विश्वास ने उपासना कांड के विषय में जो एक पुस्तक संकलित की है उस का नाम "प्राणतोषणी" है।

† देखो चैतन्य चरितामृत मध्यखण्ड का दशम परिच्छेद।

सेयों के साथ शास्त्रार्थ का स्तम परिच्छेद में वर्णन है। माधवरा दे
पचीसवें परिच्छेद में भी इसी का प्रसङ्ग है।

रामानुजस्वामी।

शंकराचार्य ने जैसा अद्वैतवाद चलाया वैसा ही इन ने वैष्णवों का वि
शिष्टाद्वैतवाद चलाया। कवियों के बीच इस पुस्तक में इन के नामोल्लेख
हेतु यह है कि वेंकटरामस्वामी ने इन का नाम कवियों के बीच में दि
है। यहां भी मैं ने उन्हीं का अनुसरण किया।

स्मृतिकालतरङ्ग के मत में रामानुजस्वामी शक १०४९ में वर्तमान
पट्ट में खुदे अक्षरों (शिलपलिपि) से भी इन की मिति शक १
ठहरती है * कर्णाट के राजाओं के ब्योरेवार चरित्र वर्णन के
से विदित होता है कि रामानुजार्य्य चोलदेश के राजा
पाण्ड्य के समय में हुए हैं †। यह राजा चोल के महाराज त्रिभु
चक्रवर्ती का जो कि ४६० फ़सली सन् अर्थात् ९७४ वा ९७५ शक
जीवन्त थे पुत्र था। उसी चरित्र वर्णन की पुस्तक में एक ठौर यह
लिखा है कि शक ९३९ में रामानुज का नाम जगत में फैल गया था
विलकिस महाशय ने जो कुछ प्रमाण बटोरे हैं; उन से वे अनुमान क
हैं कि रामानुज ११०४ शक में जीवन्त थे +। रामानुज के समसाम
विष्णुवर्द्धन के बहुत से पट्टलेख (शिलालेख) मिले हैं *। उन में
किसी में भी शक १०५५ से अधिक पुरानी मिति नहीं खुदी है। विष्णु
राण के छापे की भूमिका में विलसन् महाशय लिखते हैं कि स्वामी रा
नुज खीष्टाब्द १२०० (?) में वर्त्तमान थे। इन सब तर्कों और प्रमा
की अपेक्षा पत्थर की लीक (शिलालेख) पक्का प्रमाण है। यदि यह
सत्य है तो रामानुज को ग्यारहवीं शकशताब्दी के बीच में प्रादुर्भूत
तो कोई बाधा नहीं दीखती है †।

---

* Buchanan's Mysore.

† Journal, Asiatic society of Bengal vol. VII P. 128.

× Ibid.

\+ Wilk's History of Mysore P. 141.

* Mackenzie's Collections P. CXI.

† इस मे खीष्टाब्द ११११ में राजा विष्णुवर्द्धन की वैष्णव किया The Indian
quary.

इन का जन्म मन्द्राज के पश्चिमोत्तर भाग के पेरम्बुर नामक नगर में हुआ। इन के पिता का नाम केशवाचार्य और माता का नाम भूमिदेवी था। इन ने काञ्चीपुर में विद्या अध्ययन किया और पहिले पहिल अपने मत का उपदेश देना वहीं से आरम्भ किया। श्रीरंग में * बस के श्रीरंगनाथ की सेवा उपासना करते हुए अनेकानेक ग्रन्थ रचे और तत्पश्चात् दिग्विजय के लिये निकले।

रामानुज आचार्य का जीवनचरित दक्षिण देश में अत्यंत प्रसिद्ध है। भार्गव उपपुराण के पढ़ने से जाना जाता है कि रामानुज शेषनाग के अवतार थे। विष्णु के शंख, चक्र, गदा और पद्म आदि आयुध और भूषण उन के मतानुयायी मुख्य २ शिष्यों के रूप में अवतीर्ण हुए थे। कर्णाटी बोली में लिखी दिव्यचरित्र नाम पोथी में भी इन का जीवन चरित वर्णित है। उस में भी इन्हें शेषनाग का अवतार कहा है। पद्मपुराण में भी रामानुज का नाम मिलता है। यथा—

"रामानुजं श्रीः स्वीचक्रे" इत्यादि।

स्वामी रामानुज ने श्रीभाष्य (वेदान्तसूत्र भाष्य), गीताभाष्य, वेदार्थसंग्रह, रामायण की टीका, वेदान्त प्रदीप और शतदूषणी † प्रादिक बहुत ग्रन्थ बनाये जिन में निरा अध्यात्मविचार है। कविताई की ओर वे कभी नहीं झुके।

रामानुज के सम्प्रदायिक वैष्णवों की गुरुपरम्परा भक्तमाल में लिखी है। उस का उल्था मैं यहां लिखता हूं। उस के बांचने से जानोगे कि इन आचार्य से पहिले कौन २ से कवि और पण्डित हो गये हैं।

सिन्धुसुता लच्छिमी ठकुराइन + सम्प्रदाय गुरु मूल चलाइन ॥
तासु कृपा भाजन मुनिटोपा। विष्वक् सेन तासु शठकोपा ।
श्रीयुततासु बोपदेवा भिध ×। भयेशिष्य सुविदित विधानिध ॥

---

* [illegible] कावेरी नदी की [illegible] श्रीरंगपत्तन कहा है, [illegible]

† [illegible] नाम लिखा है [illegible]

+ [illegible]

× [illegible]

सुत रचो भागवतपुराना। प्रकट कीन्ह
श्रीश्रीनाथ तासु फिरि ताके। पुण्डरीकचो

सुक्ताफलेनग्रन्थेन सद्भागवतग्रुक्तिना।
भक्तिस्वात्यम्बुनासुध मार्कण्डेयगिरुप्रिया॥
विद्वद्धनेशगिष्येण भिषक्केशवसूनुना।
हेमादिर्वोपदेवेन सुक्ताफलमचीकरत॥

अर्थात्

भक्ति स्वातिजल मिलि जनु पोथो। भली भागवत सीप पयोधी॥
भीतर से मुक्ता फल वाके। काढ़ि समर्पा सुगिरहि ताके।
माय प्रपञ्च भृकण्डुज भूला। शोभित हो यह प्रिय अनुकूला॥
केशववैद्यतनुजयहबुधधनेशशागिर्द।वोपदेवहेमाद्रिमुदहितमुक्ताफलकिर्द।

¹इन्होंने जित ने ग्रन्थ रचे, सब की नामतालिका मुग्धबोध व्याकरण की समाप्ति में श्लोकबद्ध संनिविष्ट की है।

यस्यव्याकरणेवरेण्यघटना: स्फीता: प्रबन्धादश।
प्रख्यातानव वैद्यकेऽपितिथि निर्द्धारार्थमेकोऽद्भुत:।
साहित्येत्रयएव भागवततत्वोक्तौ त्रयस्तस्यभु
व्यन्तर्वाणिशिरोमणेरिहगुणा: के केन लोकोत्तमरा:।

अर्थात्

विदित बड़े व्याकरण पर, रुचिर रचे दश ग्रन्थ।
वैद्यकत्रय साहित्यत्रय, इक अद्भुत तिथि पन्थ॥
चौ०—पुस्तकत्रय भागवत निचोरा। वोपदेव बुधवर शिरमोरा
आजु अहो धरती तल माहीं। पटतर जोग गुणी कोउ नाहीं

¹ईश्वर कहते हैं कि वोपदेव बारहवीं ख्रीष्टीय शताब्दी के बीच में देवगढ़ के रा[illegible]
पर ऊपर की लिखि बातों से यह कथन कहां तक संगत हो सकता है, ति[illegible]
विवेचना का भार मैं माननीय पाठकों के ऊपर अर्पित करता हूं।

राममिश्र ताके मुनि यामुन * । तिन के रामअनुज आकरगुन ॥
जो करि कृपा भानुसम ज्ञाना । प्रकटेउ तम अज्ञान नसाना † ॥

कल्हण ।

इन ने कश्मीर के महाराजों के इतिहास में राजतरङ्गिणी बनाई। शक १०७० में विद्यमान थे। सो आप ही लिखते हैं ।

"लौकिकेऽब्दे चतुर्विंशे शककालस्यसाम्प्रतम् ।
सप्तत्यधिकं यातं सहस्रं परि वत्सराः ॥"

अर्थात्

लौकिक संवत चौबिस बीते + । दश सौ सत्तर शाक बितीते ॥
इस मिति में आज काल राजतरंगिणी बन रही है ।

मुरारि मिश्र ।

ये विष्णुपुर ग्राम में ११०० शकाब्द के भी पूर्व वर्तमान थे × । विष्णुपुर राढ़ देश में मल्लवेणी (मल्लावनि या मल्लभूमि) की राजधानी था। ये वहीं के राजा के आश्रित थे। ये अपनी पहिचान में बताते हैं कि मैं महाकवि गोवर्द्धन भट्ट का पुत्र हूं। ये गोवर्द्धन भट्ट जयदेव के पूर्ववर्त्ती आर्या सप्तशती के रचयिता गोवर्द्धनाचार्य ही हैं या कोई दूसरे हैं इस का पता लगाना चाहिये ।

---

* इन का बनाया "आलवन्दारस्तोत्र" है। उस में से श्रीचैतन्यचरितामृत मध्य खण्ड तृतीय परिच्छेद में एक श्लोक उठाया मिलता है -

उल्लङ्घित त्रिविधसीममसमातिशायिसम्भावनं तवपरिव्रढिमस्वभावम् ।
मायाबलेन भवतापि निगुह्यमानंपश्यन्तिकेचिदनिशं त्वदनन्य भावाः ॥"

अर्थात्—तव स्वभाव ठाकुरपन भागे । महदविशेषविषय सब त्यागे ।
सोउ मायाबल रखेउ दुराई । कोउ लख जु सतत भज शरणाई ॥

† अपनी ठकुराइन के बल से रामानुजाचार्य तक लिखतो है। केवल चार पीढ़ी होती हैं, इतनी थोड़ी पीढ़ी देखने से सर्वथा होतो है कि गुरु परम्परा में शिष्य व देशिक का नाम छिपाया गया है ।

+ जान पड़ता है कि कश्मीर में उन दिनों इस नाम का कोई संवत् चलता होगा ।

+ देखो अनर्घराघव के ऊपर पर श्रीमेकचन्द्रतर्कालङ्कार कृत भूमिका। यह ठीक नहीं है। अनर्घराघव के कवि मुरारि इन से दूसरे हैं । (अनुवादक)

प्रसिद्ध अनर्घ्य राघव नाटक इन्हीं का निर्मित है। धर्मशास्त्र और न्याय के भी ग्रन्थ इन ने बनाया होगा, ऐसा अनुमान होता है क्योंकि जगन्नाथतर्कपंचाननकृत "विवादभङ्गार्णव" नाम दाय विषयक ग्रन्थ में और विश्वनाथ न्यायपंचानन रचित न्याय विषयक भाषापरिच्छेद की टीका सिद्धान्तमुक्तावाली में मुरारि मिश्र का नाम मिलता है।

गोपालदास वैद्य।

छन्दोमंजरी ग्रन्थकार गंगादास इन के पुत्र थे। इन ने 'पारिजातहरण' नाम नाटक बनाया है; तिस का प्रथम श्लोक यह है—

"सिन्दूरपूरकृतगैरिकरागशोभे शश्यन्मदस्रवण निर्झरवारिपूरे।
सङ्ग्रामभूमिगत मत्तसुरेभकुम्भकूटे मदीयनखराशनयो विशन्तु॥"

अर्थात्—संग्रामभूमि में मतवाले देवदिग्गजों के मस्तक पर्वतों के शिखर के तुल्य हैं उन में वज्र की नाईं मेरे नखनिपात हों। दिग्गजों के मस्तकों से जो मदजल बहते हैं वे मानों झिरनों के पानी की धारा बहती है और जो सिन्दुर की रंजना है वह मानो लाल २ गेरू हैं।

गंगादास।

इन ने छन्दोमंजरी बनाई है। उस में मुरारिमिश्रकृत अनर्घ्यराघव के श्लोकों को प्रमाणरूप से उपन्यस्त किया है। इस से इन्हें उन के अनन्तर निर्द्धारित किया। छन्दोमंजरी के प्रारम्भ में ये अपनी पहिचान यों देते हैं—

"देवं प्रणम्यगोपालं वैद्यगोपालदासजः।
सन्तोपातनयश्छन्दो गंगादासस्तनोत्यदः॥"

अर्थात्

वैद्य गुपाल दास मम ताता। सन्तोपा नामक मम माता॥
गंगादास प्रणमि गोपालहिं। करहुं ग्रथित चुनि छन्दो जालहिं॥

इन के बनाये ग्रन्थों के नाम ये हैं। अच्युतचरित, गोपालशतक, दिनेशशतक और दिनेशतत्त्व। छन्दोमंजरी का अन्तिम श्लोक यह है—

सर्गैःषोड़शभिः समुज्ज्वलपदैर्व्यङ्ग्यार्थभव्याशयै—
र्येनाकारितदच्युतस्य चरितं काव्यं कविप्रीतिदम्।
कंसारेःशतकं दिनेशशतकं व्यक्तं तस्यास्त्वसौ
गङ्गादासकवेः श्रुतौ कृतधियां सच्छन्दसांमञ्जरी॥

अर्थात्—जिस ने नये २ अर्थों और मनोहर भावों से गर्भित ललित पदों से युक्त सोलह सर्गों में कविजन सुखजनक अच्युतचरित नाम ग्रन्थ और कृष्णशतक तथा दिनेशशतक बनाये; उस गंगादास कवि की निर्मित सुन्दर छन्दोमंजरी काव्यविनोदियों के श्रवण गोचर होवें।

मध्वाचार्य ।

ये दक्षिण में तुलवा के (तुलवदेशनिवासी) रहवैये मधुजीभट्ट नाम एक ब्राह्मण के पुत्र थे। ११२१ शकाब्द में जन्मे *। सर्वदर्शनसंग्रह में इन का नाम पूर्णप्रज्ञ और मध्यमन्दिर भी कहा है। और भी कई ठौर में इन की उपाधि आनन्दतीर्थ ऐसी लिखी मिलती है। सर्वदर्शनसंग्रह में इन को पवनावतार कह के निर्देश किया है। यथा—

"प्रथमस्तु हनूमान् स्याद्द्वितीयो भीमएव च ।
† पूर्णप्रज्ञस्तृतीयश्च भगवत्कार्यसाधकः ॥"

अर्थात्—वायु के प्रथम अवतार हनुमान्, द्वितीय भीमसेन और तीसरे पूर्णप्रज्ञ हुए। तीनों अवतारों में इन ने भगवान् के इष्ट कार्य साधित किये।

इन के चलाये मत को वैष्णव लोग ब्रह्म सम्प्रदाय कहते हैं और उस की पुष्टि के लिये पद्मपुराण के इस वचन को प्रमाण उठाते हैं।

"रामानुजं श्रीः स्वीचक्रे मध्वाचार्यं चतुर्मुखः" इत्यादि + ।

मध्वाचार्य ने अनन्तेश्वर के मठ में विद्याभ्यास किया और जब इन की अवस्था नौ वर्ष की थी तब वनवासी अच्युतप्रच नामक आचार्य से

---

* [illegible]

† "एतद्रहस्यं पूर्णप्रज्ञेन मध्यमन्दिरेण वायोस्तृतीयावतारत्वेन निर्णीतमिति।"

[illegible]

+ [illegible]

इन ने संन्यास आश्रम ग्रहण किया। सुनते हैं कि मध्याचार्य ने बद्रीवन (बद्रिकाश्रम) में जाके वेदव्यास से भेंट की। इन के रचित सैंतीस ग्रन्थों में से कुछेक के नाम नीचे लिखे जाते हैं।

गीताभाष्य, सूत्रभाष्य, ऋग्भाष्य, दशोपनिषद्भाष्य, अनुवाक्यानुनय-विवरण, अनुवेदान्तरसप्रकरण, भारततात्पर्यनिर्णय, भागवततात्पर्य, गीता-तात्पर्य, कृष्णामृतमहार्णव और तन्त्रसार।

शार्ङ्गधर।

शार्ङ्गधर, दामोदर के पुत्र थे। दामोदर, राघव के पुत्र थे। राघव के तीन पुत्र हुए। जेठा गोपाल, मझिला दामोदर और लहुरा देवदास था। शार्ङ्गधर के कृष्ण और लक्ष्मीधर दो छोटे भाई थे। शार्ङ्गधर के आजा (पितामह) राघवदेव राजपुताने के शाकम्भरि देश (सांभर) में रहते थे। राजा हम्मीर चौहान के यहां नियुक्त थे। हम्मीर का राज्यकाल १३२५ से १३५१ ख्रीष्टाब्द तक सिद्ध हुआ है। (?)

शार्ङ्गधर ने स्वरचित शारंगधर पद्धति में लिखा है कि संवत् १४२० अर्थात्— शक १२८५ में यह संकलित हुई।

सायणाचार्य।

पहिले शंकराचार्य के वर्णन में बतला आये हैं; विद्यानगर या विजय-नगर के राजा हरिहर शक १३१७ में वर्तमान थे। उन के पिता संगम राजा के मन्त्री के पद पर सायणाचार्य नियुक्त थे। उस से निकलता है कि सायणाचार्य शक १२०० के पूर्ववर्त्ती रहे होंगे।

सायणाचार्य ने ऋग्वेद आदि पर वेदभाष्य किया है और इन की रचित धातुवृत्ति नाम पुस्तक में यह लेख मिलता है—

" इति पूर्वदक्षिणपश्चिमसमुद्राधीश्वर कम्पराजपुत्रसङ्गमराज महामन्त्रिणामायणपुत्रेण माधवसहोदरेणसायणाचार्येण विरचिता माधवीया धातुवृत्तिः "

अर्थात्—पूर्व, दक्षिण और पश्चिम समुद्र के जो कि भारतवर्ष के दक्षिणाञ्चल में है अधीश्वर कम्पराज के पुत्र राजा संगम के मन्त्री सायण ... बनाई। सायणाचार्य के पिता मायण थे और सहो... थे। सायण ने धातुवृत्ति का नाम माधवीय धातुवृत्ति ... ? इस प्रश्न का उत्तर अनुमान से दें सकते हैं कि सायण

और माधव ये दोनों भाई प्रेम से इतने हिले मिले थे कि दोनों जो जो पुस्तक बनाते गये सब में दोनों का नाम देते गये हैं। देखो सर्वदर्शन-संग्रह में माधव ने भी सायण का नाम दिया है—

"पूर्वेषामति दुस्तराणिसुतरामालोड्यशास्त्राण्यसौ श्रीमत्सायणमाधवः प्रभुरुपन्यास्थत्सतां प्रीतये" अर्थात्—प्राचीन आचार्यों ने जो ग्रन्थ बनाये उन का अर्थ लगाना बड़ा कठिन जान उन का आलोड़न (भीतरधँसना) विद्वानों के सुखावबोधार्थ श्रीयुत सायणमाधव प्रभु ने सर्वदर्शनसंग्रह का कथन किया है।

माधवाचार्य।

इन का दूसरा नाम विजयानन्द है और स्वामी विद्यारण्य यह उपाधि मिली थी। ये सायणाचार्य के भाई हैं सो: पहिले लिख * आये। विजयानन्द ने अपने नाम से विजय नगर को शक १२५३ अर्थात् सन् 1331 खीष्टाब्द के वैशाख की ७ वीं तिथि को बसाया ऐसा ताम्रपत्रों पर खुदे अक्षरों से प्रमाणित होता है कि बोकाराव और माधवाचार्य दोनों जन समसामयिक थे। इस से जान पड़ता है कि माधवाचार्य बोकाराव को विजयनगर का राजा बना के आप उस के मन्त्री का कारभार उठाये रहे होंगे।

माधवाचार्य ने ऋक्, यजुः और सामवेद के भाष्य रचे हैं। व्यवहार में जो प्रजाओं के झगड़े आते हैं उन का निबटेरा कैसे किया जावे? जिस के निर्द्धारण में माधव ने धर्मशास्त्रानुसार व्यवहारमाधव नाम ग्रन्थ बनाया। पाणिनि व्याकरण पर एक टीका और सर्वदर्शन संग्रह भी इन के बनाये हैं। लोक कहते हैं कि शङ्करविजय भी इन्हीं की कृति है। पराशरस्मृति की व्याख्या जो इन ने लिखी है, उस का नाम माध-

---

* सर्वदर्शनसंग्रह के प्रारम्भ में एक श्लोक है। उस के पढ़ने से विदित होता है कि सायण भी मायण जी के पुत्र थे। वह श्लोक यह है—

"श्रीमत्सायणदुग्धाब्धि कौस्तुभेनमहौजसा।
क्रियते माधवार्येण सर्वदर्शनसंग्रहः"

अर्थात्—जैसे क्षीरसागर से कौस्तुभमणि निकला वैसे श्रीमान् मायण से उत्पन्न [illegible] जो माधवाचार्य [illegible] सर्वदर्शनसंग्रह बनाते हैं। [illegible] (अनुवादक)

दीप का माधव्य है। इन ने इतने अधिक ग्रन्थ बना के ऐसा नाम कमाया कि लोग इन्हें महादेव का अवतार मानने लगे।

जोनराज।

काश्मीर के महाराजों के इतिहास में इन ने कल्हण के पीछे दूसरी राजतरंगिणी रची है। ये शक १३३४ के पहिले वर्तमान थे। यथा—

" श्री जोनराज विबुधः कुर्वन्राजतरङ्गिणीम्।
सायकाग्नि मितेवर्षे शिवसायुज्य मासदत्॥"

(श्रीवर पण्डित कृत ३ री राजतरंगिणी के प्रथम तरंग का छठां श्लोक)

अर्थात्—राजतरङ्गिणि ग्रन्थ यह, जोनराज विरचन्त।
काश्मीरी पैंतीस सन, शिवसायुज्य लहन्त॥

श्रीवर पण्डित।

ये पूर्वोक्त जोनराज के शिष्य थे और तृतीय राजतरंगिणी बनाई
यथा—

" शिष्योऽस्य जोनराजस्य सोऽहं श्रीवर पण्डितः।
राजावली ग्रन्थ शेषा पूरणं कर्तु मुद्यतः॥"

(३ य राजतरंगिणी १ म तरंग का ७ श्लोक)

अर्थात्—" जोनराजबुध शिष्य हौं, श्रीवर पण्डित नाम।
राजतरंगिणि शेष गुँथि, चाहत करन तमाम॥"

इन ने सन् १४७७ ई० में शाहफते शाह के वक्त तक की तवारीख लिखी हैं *।

महीप।

इन ने १४३० में ' नानार्थ तिलक ' नाम एक कोष बनाया। हम नहीं जानते कि यह १४३० संवत् या शक का अंक है †। नानार्थ तिलक के प्रमाण शिवराम वासवदत्ता दर्पण नाम तिलक में बहुत उठाये हैं।

---

* देखो शक १७८५ चैत्र मास की तत्त्वबोधिनीपत्रिका का १८८ पृष्ठ।

† बहुधा प्राचीन पुस्तकों में शकाब्द ही लिखे मिलते हैं। इस पद्धति से हो न हो यह शक का अंक हो। इसी विवेचना से मैंने इन का नाम [illegible]

प्राज्यभट्ट अथवा प्राज्ञभट्ट ।

इन ने राजावलिपताका नाम की चौथी राजतरंगिणी बनाई है। ये ़ १४८२ में वर्तमान थे। इन ने फ़तह् शाह की अमलदारी की कैफ़ियत तवारीख़ शुरू की है। यथा—

" गङ्गाभगवतीतीर्थे स्नानधन्यत्वभूषितः ।
कविः श्रीप्राज्ञभट्टाख्यः समग्रगुणभूषितः ॥
राजावलिपताकां स्वां राज्ये फतिह भूपतेः ।
एकोन नवतिं यावद्व्यक्तीचके ततः परम् "

(इति चतुर्थ तरंगिणी के ७-८ श्लोक ।)

अर्थात्—

प्राज्ञभट्ट कवि गङ्ग पवित्र तीर्थ न्हाके कृतार्थतन सर्वगुण प्रवीण ।
तासी तवारीख या विरची पताका राजावली फतहशाह समै तदेम ॥

विष्णुस्वामी ।

इन ने वैष्णवों का तृतीय सम्प्रदाय चलाया है। इन के चलाये सम्प्रदाय को रुद्र सम्प्रदाय कहते हैं। प्रमाण यथा पद्म पुराण —

" रामानुजं श्रीः स्वीचक्रे मध्वाचार्यं चतुर्मुखः ।
श्रीविष्णुस्वामिनं रुद्रः " इत्यादि ।

ये शक १५०० के पूर्व में वर्तमान थे *। इस में प्रमाण निम्न लिखित वर्णन है। विष्णुस्वामी के शिष्य ज्ञानदेव, ज्ञानदेव के नामदेव और त्रिलोचन शिष्य हुए। इन सभों के अनन्तरही अथवा थोड़े पीछे तैलङ्ग लक्ष्मण भट्ट के पुत्र वल्लभ ने शक संवत्सर की पन्द्रहवीं शताब्दी के मध्यभाग में आचार्य पद प्राप्त कर अपने मत का अच्छा प्रचार किया। पहिले ये गोकुल में रहते थे †

---

* संवत् [illegible] में वल्लभाचार्य वर्तमान थे। देखो [illegible] The Pandit. [illegible] [illegible] ...

† [illegible]

वहां कुछ दिन बिता के तीर्थाटन को निकले भक्तमाल में लिखा है कि ये दक्षिण के विजय नगर के महाराज कृष्णदेव की सभा में पहुंचे थे वहां धर्मशास्त्री ब्राह्मणों को शास्त्रार्थ में परास्त किया। वहां के वैष्णवों ने इन्हें आचार्य पद पर वरण करके इन से दीक्षा ली। वल्लभाचार्य कृष्णचैतन्य महाप्रभु के समकालिक थे। इन की चर्चा, चैतन्य चरितामृत अन्तिमखण्ड के सातवें परिच्छेद में विस्तार से आई है।

विष्णुस्वामी ने वेदों पर भाष्य बनाये।

निम्बादित्य।

इन ने वैष्णवों का चौथा सम्प्रदाय चलाया। इन के चलाये सम्प्र० का नाम सनकादिक सम्प्रदाय है प्रमाण यथा पद्मपुराण का वचन है।

"रामानुजं श्रीः स्वीचक्रे मध्याचार्यं चतुर्मुखः।
श्रीविष्णुस्वामिनं रुद्रो निम्बादित्यं चतुः सनः॥"

अर्थात्—

रामानुजकहँ श्रीसिखय, विष्णुस्वामिहि महेश।
निम्बार्कहि सनकादि सिख, दिय मध्वहि लोकेश॥

ऐसी किंवदन्ती है कि सूर्य ने इस जगत् में पाखण्ड मिटाने के लिये निम्बादित्य के स्वरूप में अवतार धारण किया था। इसी से निम्बादित्य का नाम पहिले भास्कराचार्य था। वृन्दावन के पास ये वास करते थे। एक समय कोई दण्डी अथवा कोई २ कहते हैं कोई जैनउदासी इन के झोपड़े में आके उतरा। मतविषयक बातचित छिड़ के दोनों मे शास्त्रार्थ हो पड़ा। वाद विवाद होते २ सूर्यास्त हो गया। तब भास्कराचार्य ने सुधि सम्हाली कि गृहागत अभ्यागत का अतिथ्य करना चाहिये जिस से उसे विश्राम मिले सो भोजन के लिये कुछ सामग्री लाये। दण्डी या जैनी लोगों का नियम है कि सांझ या रात होजाने पर फिर भोजन नहीं करते। उसी नियमानुसार अतिथि ने भोजन न करना चाहा। निम्बादित्य के मतानुयायी वैष्णव लोग विश्वास करते हैं कि भास्कराचार्य ने अतिथि को उपोषित रहते देख सूर्य की गति को तब तक रोक रक्खा जब तक कि अतिथि का खाना पकाना और खाना पूर्ण न हो चुका; उतने काल तक सूर्य निम्बादित्य के निर्देशानुसार एक निम्ब के पेड़ के साम्हने ठहरे रहे। निदान सूर्य देव ने भी निम्बादित्य का कहना माना। इसी उस दिन से भास्कराचार्य का नाम पलट के निम्बार्क अथवा ऐसा चल निकला।

निम्बादित्य के समय की मिति की स्थिरता नहीं हो सकी । मथुरा के [समी]प यमुनातीर ध्रुवतीर्थ (ध्रुवक्षेत्र) में इन का आसन (गादी) था। लोग [ब]तलाते हैं कि इन के शिष्य हरिव्यास गृहस्थ थे । उन्हीं के सन्तान आज [त]क पीढ़ी से पीढ़ी लौं उक्त आसन (गादी) के अधिकारी होते आते हैं । [प]रन्तु उस आसन के महन्त कहते हैं कि हम निज निम्बार्क के वंशज [(]सन्तान) हैं। ध्रुवतीर्थ में उक्त आसन के बिछने के आरम्भ की मिति वे [१]४२० वर्ष से भी पूर्व निर्देश करते हैं पर यह भ्रमासियापन की बात [ज]चती है । पद्मपुराण के ' रामानुजं श्रीः स्वीचक्रे ' इत्यादि प्रतीकवाले [व]चन में जैसा क्रम पड़ा है ; उस के अनुसार तो यही अनुमान होता है [कि] स्वामी रामानुज आदि तीन मतप्रवर्त्तकों के पश्चात् निम्बादित्य का [प्र]ादुर्भाव भया होगा क्योंकि यदि वे सब से पहिले भये होते तो उक्त [श्ल]ोक में उन का नाम सब से पहिले लिखा मिलता ।

इन की बनाई केवल धर्माब्धिबोध नाम एक पुस्तक प्रचलित है । एत-[द्व्य]तिरिक्त अन्य कोई पुस्तक इन ने बनाई या नहीं सो विदित नहीं है। संस्कृत कोकिल दूत के ३२ वें श्लोक की टीका में धर्माब्धिबोध का यह श्लोक उठाया है—

" रजोवृत्त्या सुविक्षिप्तो ब्रह्मा जिज्ञासुरर्थतः ।
जिज्ञासया भजन्कृष्णं भक्त आजन्मजन्मनः ॥ "

अर्थात्—ब्रह्मा आजन्मकृष्णभक्त थे और भजन के लिये कृष्ण की जिज्ञासा रखते थे जब उन के चित्त में रजोगुण से विशेष विक्षेप हुआ तब वास्तव में कृष्ण भगवान् हैं कि नहीं इस बात की परीक्षा लेने की इच्छा हुई ।

इन के केशव भट्ट और हरिव्यास ये दो शिष्य थे * ।

भानुदत्त मिश्र ।

कुमार भार्गवीय चम्पू, रसमञ्जरी और रसतरङ्गिणी ये पुस्तक इन की बनाई हैं † इन ने रसमञ्जरी की समाप्ति में अपनी पहिचान का श्लोक लिखा है—

" तातो यस्य गणेश्वरः कविकुलालङ्कारचूडामणिर्देशो यस्य विदेहभू

---

* [illegible]

† [illegible]

सुरसरित्कल्लोलकिर्मीरिता । पद्येनस्वकृतेन तेन कविना श्रीभानुना योजि-
तावाग्देवीश्रुतिपारिजातकुसुमस्पर्द्धाकरीमञ्जरी ॥"

अर्थात्—कविगणशिरमुकुटमणि गणेश्वर जिस के पिता हैं और गं-
के तरङ्गों से उज्ज्वलता मिश्रित तिरहुत जिस की जन्मभूमि है। उ-
श्रीयुत भानुदत्त कवि ने श्लोकों में रसमंजरी बनाई । यह सरस्वती दे-
के कर्णगत पारिजात पुष्प के कर्णफूलों से ईर्ष्या रखती है अर्थात् यह उ-
कर्णफूलों के तुल्य है ।

धनिक ।

इन ने दशरूपक पर दशरूपकावलोक नामक तिलक लिखा । उस-
अपनी पहिचान यों बतलाई है 'इति विष्णुसूनोर्धनिकस्य कृतौ' अर्थात्
विष्णु के पुत्र धनिक की रचना में समाप्ति इस से निर्द्वन्द्व निर्धारित हो-
है कि ये विष्णु नाम कवि के पुत्र थे। इन ने उक्त तिलक में विद्धशाल-
भंजिका के रचयिता राजशेखर के वाक्यों के उदाहरण दिये हैं। उस से ज्ञा-
जाता है कि ये ९०० शताब्दी के बीच में वर्त्तमान थे। इन ने 'काव्यनिर्ण-
नाम एक साहित्य का ग्रन्थ बनाया है। दशरूपकावलोक में इन ने कहीं
स्वरचित पद्य भी उठाये हैं । उन के पढ़ने से इन्हें एक महाकवि कहने
सन्देह नहीं रहता है। प्रस्तुत पुस्तक में पद्मगुप्त और रुद्र इन दो कवि-
का वर्णन हम नहीं कर सके । इन दोनों के नाम दशरूपकावलोक
मिलते हैं।

मायूराज ।

इन ने उदात्त राघव बनाया * ।

श्रीकृष्ण मिश्र ।

इन ने प्रबोधचन्द्रोदय नाटक निर्माण किया । कोई २ बतलाते हैं
केशव मिश्र इन्हीं का नामान्तर है ।

इति द्वितीय परिच्छेद समाप्त हुआ ।

* काव्यमाला में इन्हें ...... लिखा है । (अनुवादक)

तृतीयकाल।

चन्द्रशेखर वैद्य।

इन ने 'पुष्पमाला' नामक काव्य बनाया है॥

विश्वनाथ कविराज।

ये ऊपर उक्त चन्द्रशेखर के पुत्र हैं। यह बात इन ने आप साहित्य दर्पण की समाप्ति में कही है। यथा—

" श्रीचन्द्रशेखरमहाकविचन्द्रसूनु श्रीविश्वनाथकविराजकृतं प्रबन्धम्।
साहित्यदर्पणममुं सुधियो विलोक्य साहित्यतत्त्वमखिलं सुखमेववित्त॥"

अर्थात्—श्रीचन्द्रशेखर महाकवियों के बीच चन्द्रसदृश सब को सुखद ।। उन के पुत्र श्रीविश्वनाथ कविराज ने यह साहित्यदर्पण निर्माण किया। इसे पढ़ कर पण्डित लोग साहित्य शास्त्र के सकल तत्त्वों को सहजही में जान लेश्रो।

श्रीयुत कावेल महाशय जो कि संस्कृत कालिज के अध्यक्ष थे गुनावन करते हैं कि ये कविराज स्त्रीष्टीय पन्द्रहवीं शताब्दी में हुए हैं। उन का अनुमान हमारी बुद्धि में भी धँसता है क्योंकि सनातन गोस्वामी आदि जो लोग इन के पश्चात् उत्पन्न हुए हैं उन्हों ने अपने २ ग्रंथ में प्रसङ्ग पड़े पर इन का नामोल्लेख किया है। देखो; यथा श्रीमद्रूप गोस्वामी स्वसङ्कलित पद्यावली में इन के श्लोक को उठाते हैं।

'व्यतीताः प्रारम्भाः प्रणयबहुमानो विगलितो।
दुराशा याता मे परिणतिरियं प्राणितुमपि॥
यथेष्टं त्रेष्यन्तां विरहिवधविख्यातयशसो।
विभावामध्येते पिकमधुपुपां शुभ्रभृतयः॥'

अर्थात्—साध की बातें जाती रहीं। गाढ़ानुरागजनित मान टल गया। जितनी आशा बंधी थी वे सब दुराशा भईं। अब तो जीवन से भी निराशा होती है। विरहिजनों के वध से नाम कमाये हुए कोकिल, वसन्त और चन्द्र आदिक ये सब उद्दीपन विभाव मेरे पक्ष में जो करें सो सब थोड़ा है।

कवि कर्णपूर ने स्वरचित अलङ्कार कौस्तुभ में विश्वनाथ कविराजकृत साहित्य दर्पण के " काव्यं रसात्मकं वाक्यं " अर्थात्—रसभरे वाक्य को काव्य कहते हैं। इस काव्य के लक्षण वाक्य को उठा के खण्डन किया है। किंच कृष्णदास कविराज ने जो कि सनातन गोस्वामी आदि के साथ

रहा करते थे, अपने बनाये चैतन्य चरितामृत के अन्तिमखण्ड के प्रथम परिच्छेद में साहित्य दर्पण के प्रमाण उठाये हैं।

विश्वनाथ कविराज के रचित ग्रन्थों के नाम यथा—चन्द्रकला, प्रभावती, कुवलयाश्वचरित, परिणयराघवविलास, षोड़श भाषाओं में प्रशस्ति रत्नावली और साहित्यदर्पण * निम्न लिखित नामवालेपण्डितों का वर्णन प्रस्तुत पुस्तक में नहीं हो सका। उदयनाचार्य † चण्डीदास, चन्द्रशेखर, धर्मदत्त, नारायण, महिमभट्ट, राघवानन्द, रुद्रट, वक्रोक्ति जीवितकार, वाचस्पति मिश्र ‡ व्यक्तिविवेकार और श्रीमल्लोलचक्रा। साहित्य दर्पण में इन के नाम मिलते हैं।

विष्णुपुरी।

इन ने विष्णुभक्तिरत्नावली सङ्कलित की है। इन के शिष्य व्यासतीर्थ और उन के भी शिष्य माधवेन्द्र पुरी थे। वैष्णवीवन्दना में महाप्रभु के पार्षदों में ये गिनाये गये हैं।

माधवेन्द्रपुरी।

चौदहवीं शताब्दी के पूर्व में ये वर्तमान थे और इन के प्रेम परिपूर्ण आशयोपनिबद्ध जितने श्लोक श्री चैतन्यचरितामृत में संगृहीत हुए हैं; उन के पढ़ने से मन रोके नहीं रुकता, मोहित हो जाता है। उन में से एक यथा—

अयिदीनदयार्द्र नाथ हे मथुरानाथ कदावलोक्यसे।
हृदयं त्वदलोककातरं दयित भ्राम्यति किं करोम्यहम्॥

अर्थात्—ऐ दीनों पर दयालु नाथ मथुरानाथ प्यारे! मुझे कब दिखाई दोगे तुम्हारे देखे विना मेरा मन व्याकुल तड़फता है। अहो मैं क्या करूं

ईश्वरपुरी।

यह माधवेन्द्र पुरी के शिष्य थे और महाप्रभु ने इन को मंत्रदाता (कनफूंके गुरु) रूप से वरण किया है। इस का वर्णन चैतन्य चरितामृत के प्रथम खण्ड के सत्रहवें परिच्छेद में है। इन के बनाये कई श्लोक पद्यावली में सङ्गृहीत हैं। उन में से एक यथा—

" कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानां
पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परपदप्राप्तये प्रोच्यमानम्।
विश्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनं सज्जनानां
बीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये कृष्णनाम ॥ "

अर्थात्

निधी कल्याणों की कलिमलहरी पावन बड़ी
गलीं में मुक्ती की गैंथ सपदि मोक्ष मद चढ़ी।
भले जाते जीवैं बयन सचुपावैं सुकवि की
सुकृष्णाख्या धर्मद्रुमजननि रौरे भल करै ॥

रघुपति उपाध्याय।

ये चौदहवीं शताब्दी में वर्तमान थे। श्री श्रीचैतन्य महाप्रभु से प्रयाग में इन की भेंट हुई थी। ये तिरहुत के रहवैये थे। श्री चैतन्य चरितामृत के मध्यमखण्ड के उन्नीसवें परिच्छेद में इन की भेंट का वृत्तान्त लिखा है। इन का रचित एक श्लोक यथा—

" श्रुतिमपरे स्मृतिमपरे भारतमन्ये भजन्तु भवभीताः।
अहमिह नन्दं वन्दे यस्यालिन्दे परम्ब्रह्म ॥ "

अर्थात्—' कोउ श्रुति कोउ स्मृति गहहु, कोउ भारत भवभयभीत।
बन्दौं नन्दहिं खेलते, जासु पौरि गोऽतीत ' ॥

पद्यावली में भी ठौर २ इन के श्लोक संगृहीत हैं।

कवि रामचन्द्र।

इन ने ' गोपाल लीला ' नाम काव्य बनाया है। संवत् १५५० अर्थात् शक १४०५ में यह काव्य बना *।

---

* The Pandit Vol. VI No 65 p. 109.

श्री श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु ⊛ ।

जगत् के अज्ञान अन्धकार दूर करने के हेतु ये नवद्वीप (नदि
नगर रूपी उदयाचल में सूर्य सदृश उदय हुए । श्रीचैतन्यचरितामृ
लिखा है कि ये संवत् १४०७ शक में प्रकट हुए। इन की जन्मतिथि
ज्ञापन में जो बंगाली बोली में पद्य हैं उन का उल्था यथा—

शाके चौदह सौ पर सात। नदिया बीच विश्व विख्यात॥
श्रीचैतन्य देव अवतारी। अड़तालीस बरीस विहारी॥
शाके चौदह सौ पञ्चावन। अन्तर्द्धान भये जगपावन॥

वैष्णवों की मण्डली में पञ्चाङ्ग से उठाई इन के जन्मदिन की
कुण्डली यों लिखी मिलती है—
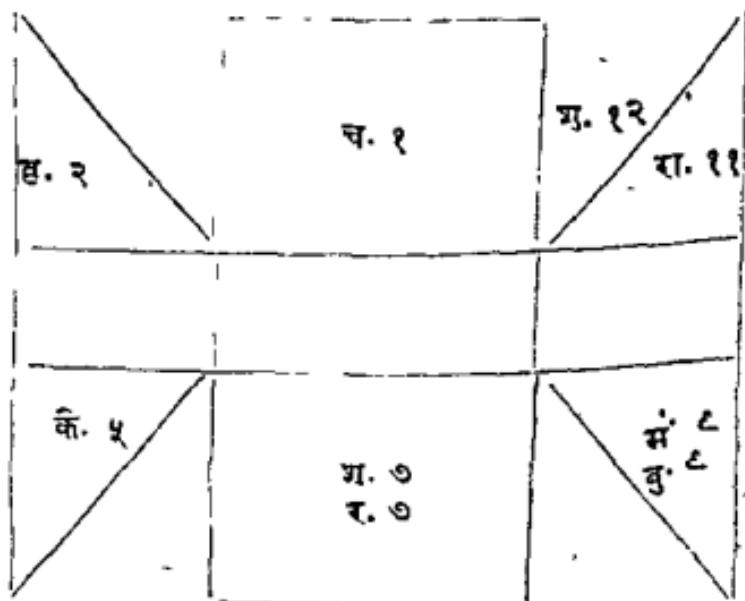
और जन्मतिथि का चक्र यह है।

१	११	८
१५	५५	४०
४१	०	२३

⊛ यद्यपि इन के पार्षदों में से कोई २ इन को अपेक्षा वयोज्येष्ठ थे तोभी [illegible]
) में मैं ने इन का वर्णन औरों से आगे को किया।

इस बात के प्रमाण का एक श्लोक भी है। यथा—

"शाके मुनिव्योमयुगेन्दु गणये शुभोदयः फाल्गुनपौर्णमास्याम्।
त्रैलोक्य भाग्योदयपुण्यकीर्तिः प्रभुः शचीनन्दन आविरासीत्॥"

अर्थात्—१४०७ शक की फाल्गुन पूर्णिमा को त्रैलोक्य के भाग्योदय के निमित्त पुनीत कीर्ति विस्तार करनेहारे धन्यजन्मा प्रभु चैतन्य देव शची नाम माता की कोख से उत्पन्न हुए।

महाप्रभु ने निज कोई ग्रन्थ नहीं रचा किन्तु आत्मानुभाव श्रीरूप गोस्वामी इत्यादि में ऐसा संचारित कर दिया कि उस के प्रकट प्रभाव से उन्हों ने भांति २ के ग्रन्थ बना डाले। जब कभी प्रेम के उमङ्ग में श्रीमुख से स्वरचित दो एक श्लोक लोगों को सुनाते थे उन के पढ़ने से काव्यरचना में ये कैसे पटु थे तिस का पूरा परिचय मिल जाता है। बानगी के लिये श्रीचैतन्यचरितामृत मध्यम खण्ड के तीसरे परिच्छेद से उन का कहा एक श्लोक यहां उठाता हूं—

"न प्रेमगन्धोऽस्ति दरोऽपि मे हरौ क्रन्दामि सौभाग्यभरं प्रकाशितुम्।
वंशीविलास्याननलोकनं विना बिभर्मि यत्प्राणपतंगकान्वृथा॥"

अर्थात्—

हरिसों नहिं तनिकहु अनुरागा। विलखहुँ प्रकटन निज बड़ भागा॥
मुरली चारु बदन बिनु देखे। प्राणपखेरु जियहिं किहि लेखे॥

महाप्रभु ने किसी दिग्विजेता नाम कवि को अलङ्कार विद्या के शास्त्रार्थ में परास्त किया। तिस का वर्णन देखो, चैतन्यचरितामृत प्रथम खण्ड के सोलहवें परिच्छेद में लिखा है। जगन्नाथाष्टक जिस के कि प्रत्येक श्लोक के अन्तिम चरण में "जगन्नाथस्वामी नयनपथगामी भवतु मे" अर्थात् नयनन्ह मम दरश दीजे जगन्नाथ स्वामी ऐसा पठित है, इन्हीं का बनाया है। श्रीराधिकाजी के अष्टोत्तर शत नाम तिलक जो स्तोत्र विशेष है वह भी इन्हीं की कृति है। पद्यावली में "न जाने संमुखायाते प्रियाणि वदति प्रिये। प्रयान्ति मम गात्राणि श्रोत्रतां किमुनेत्रताम्।" अर्थात्—जब प्रियतम सम्मुख आके प्रिय वचन बोलने लगता है, तब मेरे सर्वांग किधौं आंख किधौं कान हो जाते हैं अर्थात् उसे देखना और उस के वचन सुनना छोड़ और इन्द्रियों की वृत्ति की सुधि नहीं रहती है।

इस श्लोक को "श्रीयुक्तप्रभुपादानाम्" अर्थात् श्रीयुक्तमहाप्रभु का बनाया यह श्लोक है ऐसा कह के उठाया है। श्रीयुक्तप्रभुपाद से चैतन्य महाप्रभु ही अभिप्रेत हैं इन के बिना न्यारे किसी के मुख से कैसे ऐसा प्रेमपीयूष की चासनी से पगा श्लोक निकलता?

सार्वभौम भट्टाचार्य।

चैतन्यमंगल नाम पुस्तक में इन का नाम वासुदेव लिखा है। ये धुरन्धर पण्डित थे। न्यायशास्त्र और अमरकोष पर भी इन ने अलग २ एक २ टीका लिखी है। सुनने में आता है * कि बंगाल के विख्यात धर्मशास्त्री रघुनन्दन भट्टाचार्य, प्रधान नैयायिक रघुनाथशिरोमणि, कृष्णानन्द 'हो न हो तन्त्रसार के रचयिता' ? और चैतन्य देव भी इन्हीं के शिष्य थे, पर इस का कुछ आधार किसी पुस्तक में नहीं मिला।

इन ने चैतन्याष्टक रचा है उस के देखने से इन की कविता का पूर्ण परिचय मिलता है। चैतन्यचरितामृत मध्यखण्ड के छठें परिच्छेद में इन का वर्णन लिखा है।

अनुमान होता है कि कवि सार्वभौम नामक एक और भी मनुष्य थे और पद्यावली में जो एक श्लोक कवि सार्वभौम के नाम से उठाया है वह इन्हीं का रचित होगा। यथा—

"इदानीमंगमक्षालि रचितंचानुलेपनम्।
इदानीमेव ते कृष्ण धूलीधूसरितं वपुः॥"

अर्थात्

अभी तोहि नहला धुला, चन्दन चर्चित कीन्ह।
बहुरि तुरत धुरमाटिली, काय कान्ह करि लीन्ह॥

चैतन्यचरितामृत में बहुत से श्लोक सार्वभौम भट्टाचार्य के बनाये आकर संगृहीत हुए हैं।

" नाहं विप्रो नच नरपतिर्नापि वैश्यो न शूद्रो
नाहं वर्णी नच गृहपतिर्नो वनस्थो यतिर्वा।
किन्तु प्रोद्यन्निखिलपरमानन्दपूर्णामृताब्धे-
र्गोपीभर्तुः पदकमलयोर्दासदासानुदासः॥"

अर्थात्—न मैं ब्राह्मण हूं। न क्षत्रिय हूं। न वैश्य हूं। न शूद्र हूं। न ब्रह्मचारी हूं। न गृहस्थ हूं। न वानप्रस्थ हूं। और न संन्यासी हूं। यदि पूछो ब्राह्मणादि नहीं हो तो तुम हो क्या? तो उत्तर यह है कि पूर्ण परमानन्दरूपी अमृत से भरे पूर रहने समुद्र सदृश गोपीनाथ के चरणारविन्द युगल के दासों के सेवकों का अनुगामी टहलुआ मैं हूं।

भवानन्द।

हो न हो येही राय रामानन्द के पिता हैं। चैतन्यचरितामृत के अन्तिम

* भारतवर्ष १०, पृ ४६०।

खण्ड के नवें परिच्छेद में इन का नामोल्लेख है। निम्नलिखित श्लोक पद्या- वली में भवानन्द कृत जानकर उठाया है—

" लावण्यामृतवन्यामधुरिमलहरीपरीपाकः ।
कारुण्यानां हृदये कपटकिशोरः परिस्फुरतु ॥"

अर्थात्—कपट से किशोरमूर्त्ति धारण किये श्रीकृष्ण सन्तों के दयार्द्र (हृदय) रूप में अपना यह दिव्य दर्शन दें जिस दर्शन में लावण्यरूपी अमृत के (अपार) दैयार नदी माधुरी से सनी घनी लहरें लेती रहती है।

राय रामानन्द ।

ये चैतन्य महाप्रभु के समसामयिक थे। चैतन्यचरितामृत मध्यखण्ड (के) आठवें परिच्छेद में इन का वर्णन है। दक्षिण में जो गोदावरी तीर (पर) विद्यानृसिंह नाम तीर्थ है, वहां महाप्रभु के साथ इन का मिलाप (हु)आ था।

इन ने श्रीक्षेत्र के राजा प्रतापादित्य की आज्ञा से ' जगन्नाथ वल्लभ ' (ना)म नाटक रचा। पद्यावली ग्रन्थ में राय रामानन्द के रचित कई एक (श्लो)कों को संग्रह किया मिलता है।

स्वरूप दामोदर ।

नवद्वीप में ये सदा महाप्रभु के श्रीचरणसमीप रहते थे। जब (म)हाप्रभु को संन्यास लेते देखा; तब इन ने आप भी संन्यास ले लिया। (प)रन्तु दण्डी संन्यासियों के मंडनपाद की ओर से तनिक भी नवत न (था)। संन्यासी होने के पहिले इन का नाम पुरुषोत्तमाचार्य था। ये (नित्य) (श्री)कृष्ण के भजन आनन्दही में मग्न रहते थे। बड़े सरस और रसज्ञ (थे)। जब कभी कोई जन कोई नवीन ग्रन्थ आदि बना के महाप्रभु के (पा)स ल्याता तो पहिले प्रभु इन्हीं को उस के गुण दोष की विवेचना के (लि)ये देखने को देते थे। जब ये जांच लेते थे कि इस में कोई सिद्धान्त (विरु)द्ध भाव नहीं है तब उसे महाप्रभु के श्रवणयोग्य ठहराते थे। इन (का) कोई प्रसिद्ध काव्य बनाया है कि नहीं, सो हम नहीं जानते परन्तु (चै)तन्यचरितामृत के मध्यखण्ड के दसवें परिच्छेद में इन की प्रशं- (सा) प्रशंसा लिखी है, उस से जाना जाता है कि ये महान् कवि काव्य-

कला में निपुण रहे होंगे। इन ने महाप्रभु की लीला के वर्णन में एक
कड़चा * रचा था।

श्रीसनातन गोस्वामी।

ये श्रीचैतन्य महाप्रभु के समसामयिक थे। चैतन्यचरितामृत मध्य
खण्ड के प्रथम परिच्छेद में इन का वृत्तान्त विस्तार से वर्णित है।

हरिभक्तिविलास †, भागवतामृत, वैष्णवतोषणी, ये सब ग्रन्थ
सनातन गोस्वामी के रचित हैं। मेघदूत पर इन ने तात्पर्यदीपका नाम
टीका बनाई है ‡।

सनातन, रूप और वल्लभ इन तीनों गोसाइयों की पूर्व वंशावली का
वर्णन यों लिखा मिलता है। कर्णाटदेश के किसी राजा का नाम श्रीसर्व
था। वह भरद्वाज गोत्रज था। उस का पुत्र अनिरुद्ध देव हुआ। उस
दो रानियां थीं। उन में से एक से रूपेश्वर और दूसरी से हरिहर हु
अनिरुद्धदेव अपने राज्य को दोनों पुत्रों में बांट के जब श्रीवृन्दावन ध
सिधारे; तब हरिहर अपने जेठे भाई को जिसे शास्त्राभ्यास का व्य
था, राजकाज नहीं संभालता था, बरबस सिंहासन से उतार
पूराराज्य करनेलगा। हृतराज्य रूपेश्वर आठ घुड़चढ़े सङ्ग लेके पूर्व
में शिखरेश्वर नाम राजा के यहां जाके रहा। वहां कुछ काल पीछे
पद्मनाभ नाम एक पुत्र हुआ। उस ने नानाशास्त्रपारङ्गत हो सर्वत्र ख्या
पाई। कुछ दिन अनन्तर पद्मनाभ गङ्गातीरनिवास करने की इच्छा
शिखर राजा की राज्यभूमि छोड़ 'नयाहाटी' नाम ग्राम में आ बस
क्रम से उस के अठारह बेटियां और पांच बेटे हुए। पांचों पुत्रों के न
[illegible], जगन्नाथ, नारायण, मुरारि और मुकुन्द। इन में

[illegible] का एकलौता बेटा कुमार नाम हुआ। उस पर कोई अनिष्टापात हुआ। उस के दुःख से वह जन्मभूमि छोड़ बङ्गाल में आ बसा। जिनके पुत्र हुए उन में से तीन महा वैष्णव शिरोमणि जगत् उजागर हुए। तीनों के नाम ये हैं सनातन, रूप और वल्लभ ये तीनों जन भागवत आदि ग्रन्थों के तात्पर्य ग्रहण में अच्छा धंसे और परम भगवद्भक्त हुए। यहाँ तक कि ऐन्द्रियिक विषयों को विषतुल्य त्याग कर विरक्त निष्केवल कृष्णलीलारूपी अमृत के पान में प्रेम से मगन मन रहा करते थे॥

श्रीरूप गोस्वामी।

ये सनातन गोस्वामी जी के मझिले भाई हैं। यथा जीव गोस्वामी ने लिखा है—

" सनातनसमो यस्य ज्यायान् श्रीलसनातनः।
श्रीवल्लभोऽनुजोयस्य स रूपो जीवसद्गतिः॥ "

अर्थात्—जिन के जेठे भाई सनातन मुनि के तुल्य श्रीसनातन गोस्वामी और लहुरे भाई श्री वल्लभगोस्वामी हैं; वे रूप गोस्वामी जीव गोस्वामी की अथवा जीव मात्र की उत्तम गति के हेतु हैं॥

चैतन्यचरितामृत के मध्यम और अन्तिम खण्ड में ठौर २ पर इन के चरित्र का वर्णन है। इन के बनाये ग्रन्थों के नाम नीचे लिखे जाते हैं—

भक्तिरसामृतसिन्धु, विदग्धमाधव, ललितमाधव, उज्ज्वल नीलमणि, दानकेलिकौमुदी, स्तवावली, (यह गोविन्द विरुदावली और गीतावली इत्यादि कई एक पुस्तकों की गुटिका है) उत्कलिकावल्लरी, अष्टादश लीलाच्छन्द, नाटकचन्द्रिका, लघुभागवतामृत, हंसदूत, उद्धवसन्देश, पद्यावली, मथुरामाहात्म्य और मुक्ताचरित्र * तथा गोपीप्रेमामृत। इन में से जिस २ ग्रन्थ के निर्माण की जो २ मिति निर्दिष्ट है; उसे विशद करके लिखता हूँ।

" नन्दसिन्धुरवाणेन्दुसंख्ये संवत्सरे गते।
विदग्धमाधवं नामनाटकं गोकुले कृतम्॥ "

---

* वैष्णवतोषणी की समाप्ति में [illegible] पुस्तकों की जो नामावली है, उस में इस का नाम नहीं लिखा तो भी [illegible] [illegible] लिखा है। [illegible] [illegible] मुक्ताचरित्र [illegible] छपाई है।

अर्थात्—विक्रम संवत् १५८९ में गोकुल में बस के विदग्धमाधव नाटक निर्माण किया।

" नन्दाङ्गवेदेन्दुमिते शकाब्दे शुक्रस्य मासस्य तिथौ चतुर्थ्याम्।
दिने दिनेशस्य हरिं प्रणम्य समापयं भद्रवने प्रबन्धम् ॥"

अर्थात्—१४६३ शक ज्येष्ठ की सौर चतुर्थी रविवार को भद्रवन में बस के हरि को प्रणाम करके मैंने यह पुस्तक रचना करके समाप्त की।

" रामाङ्गशक्रगणिते शाके गोकुलमधिष्ठितेनायम्।
भक्तिरसामृतसिन्धु र्विटङ्कितः क्षुद्ररूपेण ॥"

अर्थात्—१४६३ शक में गोकुल में बस के क्षुद्रजीव रूप गोस्वामी ने भक्तिरसामृतसिन्धु नाम ग्रंथ बनाया।

' गतेमनुशते शाके चन्द्रस्वरसमन्विते।
नन्दीश्वरे निवसता भाणिकेयं विनिर्मिता ॥

अर्थात्—श्री रूपगोस्वामी ने नन्दीश्वर नाम ग्राम में निवास करके शाके १४७१ में ' दानकेलिकौमुदी' नाभाणिका * रची। उसी शकाब्द में उत्कलिकावल्लरी भी बनाई।

'चन्द्राद्रिभुवने शाके पौषे गोकुलवासिना।'
इयमुत्कलिकापूर्वा वल्लरी निर्मिता मया॥

अर्थात्—१४७१ शक पौषमास में मैंने गोकुल में बस के यह उत्कलिका-वल्लरी विरची।

निम्न लिखित नामवाले कवियों के विषय में प्रस्तुत पुस्तक में अन्य कुछ विशेष वर्णन नहीं हो सका। पद्यावली में इन के नाम मिलते हैं। सारङ्ग, शुभाङ्ग, हर, दाक्षिणात्य, श्रीविष्णुपुरी † सर्वज्ञ, लक्ष्मीधर ‡ वैष्णव, व्यासपाद, नारद, कविरत्न, यादवेन्द्रपुरी, शारदाकार, पुरुषोत्तम-देव, औत्कल, सर्वानन्द, माधव सरस्वती, जगन्नाथसेन, माधव, कविचंद्र, भवानन्द, सुरोत्तमाचार्य, श्रीगर्भ, सर्वाभीष्ट, श्रीकर, गौड़ीय, मंगल,

---

* नाटिका विशेष। इस का लक्षण साहित्यदर्पण ४ परिच्छेद में देखो।

† विष्णुभक्ति रत्नावली इन की बनाई है। ये पहिले काशी में रहते थे। पीछे जगन्नाथ से पुरी जगन्नाथ में आ बसे।

‡ ...होता है कि ये भोजराज के पोते उदयादित्य के पुत्र थे। यदि यह सच है तो शाके १०२६ अर्थात् ११०४ ई० में वर्तमान रहे होंगे। धर्मशास्त्र विषयक कल्पतरु इन्हीं का बनाया जान पड़ता है।

शिरोमौलि (शिवमौलि), श्रीहनुमत, * आगम, भुवन, श्रीगोविन्द मिश्र, दिवाकर, थांग, दीपक, कविसार्वभौम, वनमाली, मुकुन्द भट्टाचार्य, श्रीशङ्क (शङ्कर), श्रीमान्, योगेश्वर, केशवच्छत्री, सर्वविद्याविनोद भट्टाचार्य, वसुदेव, अभिनन्द, चिरञ्जीव, जयन्त, सञ्जय, कविशेखर, पुष्कराक्ष, (रव्य) गोविन्द भट्ट, दैत्यारि पण्डित, षाण्मासिक, कविराज मिश्र, स्वरूपसेनदेव, रुद्र (रुद्र), विश्वनाथ, अंगद, नाथदेव, वासव, मोटक, जगदानन्द राय, सूर्यदास, चक्रपाणि, हरिहर, माधव चक्रवर्ती, मनोहर, कर्णपूर, वाणीविलास, तैरभुक्त, रामचन्द्र दास, षष्ठीदास, हरिहर, कुमार, धन्य, हरिभट्ट, शरण्य, हरि, केशव भट्टाचार्य, त्रिविक्रम, क्षेमेन्द्र, भीम भट्ट, शान्तिकर, आनन्द, शम्भु, शचीपति, वीरसरस्वती, अपराजित, नील, पञ्चतंत्र, शुक्ल, अविलम्ब सरस्वती और योगेश्वर।

प्रबोधानन्द सरस्वती।

इन का नाम पहिले प्रकाशानन्द था। ये काशीवासी संन्यासियों में मुख्य थे। पहिले ये अद्वैत (माया) वाद मतानुगामी थे। पश्चात् श्रीचैतन्य महाप्रभु से शास्त्रार्थ में परास्त हो के वैष्णव मत में दीक्षा ली। चैतन्यचरितामृत मध्यम खण्ड चौबीसवें परिच्छेद में इन का व्यौरेवार वर्णन है। चैतन्यचरितामृत नाम पुस्तक इन्हीं की बनाई है। शाके १६८५ अग्रहायण मास में इस ग्रन्थ पर श्रीश्यामकिशोर देव ने टिप्पण किया। यथा—

> " शाके बाणविधातृवक्त्ररसकुप्रोक्ते सहोमासके
> राकायां पुरुषोत्तमे सुरगुरोरानन्दिनः प्राचरन्।
> श्रीमच्छ्यामकिशोरदेवमिपतश्चैतन्यचन्द्रामृत-
> ग्रन्थमाकरणीसुबोधरसिकास्वादिन्यसौ टीकिका॥"

अर्थात्—बृहस्पति के मुख्य श्रीप्रबोधानन्द जी ने पुरुषोत्तमदेव में रहे। श्रीमान् श्यामकिशोर देव के मन में बैठ के उन के द्वारा शक १६८५ अगहन की पूर्णिमा को विशेष व्युत्पन्न रसिक जनों की रसीली अनूठी चैतन्यचन्द्रामृत नाम ग्रन्थ के अक्षरार्थ का यथार्थ बतानेवाली यह टीका की टीका प्रकाशित की।

* [illegible]

गोपाल भट्ट गोस्वामी ।

ये द्राविड़ ब्राह्मण थे। इन के पिता का नाम वेंकट भट्ट था। इन ने महाप्रभु से मन्त्र लिया। चैतन्यचरितामृत मध्य खण्ड के नवें परिच्छेद में और कर्णानन्द रस नाम ग्रन्थ के छठें निर्यास (गोद) में इन के चरित्र वर्णित हैं।

गोस्वामी गोपाल भट्ट ने कृष्णकर्णामृत पर टीका और वृन्दावन यमक नाम काव्य रचा। टीका के मंगलाचरण यथा—

" चूड़ाचुम्बितचारुचन्द्रकचमत्काश्वजभ्राजितं
दिव्यं मंजुमरन्दपङ्कजमुखभ्रूनृत्यदिन्दिन्दिरम् ।
रज्यद्वेणुकमूलरोकविलसद्बिम्बाधरौष्ठं मुहुः
श्रीवृन्दावनकुंजकेलिललितं राधाप्रियं प्रीणये ॥"

अर्थात्—श्रीवृंदावन के निकुंजों में लीलाविलास करने में सुभग सुहावन राधा के मनभावन की आराधना मैं करता हूं। कैसे हैं राधा प्रिय ! माथे में जो मोरपंख बांधे हैं, उस के सुन्दर चन्द्रकों से अति अद्भुत शोभा जिन की हो रही है और सरस मंजुल जिन के मुखरूपी कमल पर भ्रमर समान भृकुटि भ्रमण कर रही है। दोनों हाथों में शोभमान वंशी को पर्यन्त के छिद्रों पर जो विम्बसदृश रक्तवर्ण अपने ओष्ठों का अर्पण कर के वार २ मधुरध्वनि से बजा रहे हैं।

और ' कृष्णकर्णामृतेऽप्येतां टीकां श्रीकृष्णवल्लभाम् ।
गोपालभट्टः कुरुते द्राविड़ावनिनिर्जरः ॥ '

अर्थात्—द्राविड़ देश का ब्राह्मण गोपालभट्ट कृष्णकर्णामृत पर श्रीकृष्णप्रिया नाम की यह टीका रचता है।

इन के बनाये कई एक श्लोक पद्यावली में संगृहीत हुए हैं। उन्हीं में का एक यह भी है। यथा—

" श्रुतमप्यौपनिषदं दूरे हरिकथामृतात् ।
यन्न सन्ति द्रवच्चित्तकम्पाश्रुपुलकोद्गमाः ॥ "

अर्थात्—उपनिषदों के अर्थ सुनने से न चित्तद्रव, न तनुकम्प, न अश्रु और पुलकावलि होती है। इस से सूचित होता है कि उन का [illegible] रूखा सा होगा। हरिकथा रूपी अमृत के पान से ये सब [illegible] के उत्पन्न होती हैं। तिस से निश्चय होता है कि उन का [illegible] सरस है।

[illegible] विलास भी इन की बनाई पुस्तकों में प्रसिद्ध है। इन्हें छोड़ [illegible] भी इन्हीं की कृति हैं। राधारमण गोस्वामी ने भागवत पर

'दीपिकादीपक' नाम जो व्याख्यान ग्रन्थ लिखा; उस के ग्यारहवें स्कन्ध के आरम्भ का श्लोक यह है—

" श्रीचैतन्यं प्रपद्येऽहं सार्धितं रसनित्यकम्।
श्रीमद्गोपालभट्टञ्च षट्सन्दर्भ प्रकाशकम्॥ "

अर्थात्—अनुधावन कर भक्तिपथ दरसाने निमित्त भक्तों के समूह में आमिले, श्रीचैतन्य देव के जिन में रस सदा निवास करता है मैं शरणागत हूं। षट्सन्दर्भ ग्रन्थ के प्रकाशक श्रीमान् गोपालभट्ट के भी मैं शरणागत हूं।

रघुनाथभट्ट गोस्वामी।

ये काशी निवासी तपनमिश्र के पुत्र हैं। महाप्रभु के साथ इन के भेंट का वर्णन चैतन्यचरितामृत अन्त्य खंड के तेरहवें परिच्छेद में है। यद्यपि इन की बनाई कोई पुस्तक आदि आज तक मेरी दृष्टितले नहीं पड़ी तौ भी ये ग्रन्थ बनाना नहीं जानते हों यह बात मन नहीं बोलता क्योंकि चैतन्यचरितामृत में इन की बड़ाई जो लिखी है, उस का उलथा नीचे किया जाता है—

काव्यप्रकाशपदावदी, सकलशास्त्रपरवीन।
वैष्णववर रघुनाथ रघु- नाथ भजनलवलीन॥

गोस्वामी रघुनाथदास।

ये त्रिवेणी के निकट सप्तग्राम के निवासी थे। ये विभव विलास त्याग करके वैरागी हो गये। चैतन्यचरितामृत अन्त्य खण्ड के छठे परिच्छेद में इन का चरित्र वर्णित है।

स्तवावली, मनःशिक्षा और मुक्ताचरित्र नाम काव्य इन के बनाये हैं। पद्यावली ग्रन्थ में भी इन के बनाये कुछ श्लोक सङ्कलित हैं। उन में से यह एक है,

" क्वाननं क्व नयनं क्व नासिका क्व श्रुतिः क्व च शिखेति देशितः।
तत्र तत्र निहिताङ्गुलीदलो वल्लवीकुलमनन्दयत्प्रभुः॥ "

अर्थात्—श्री बालकृष्ण प्रभु से गोपियां पूछतीं थीं कि मुंह कहां है? आंख कहां है? नाक कहां है? कान कहां है? चोटी कहां है? तो उन के देखने के लिये जिस अङ्ग को वे पूछतीं थीं वे उसी अंग पर अपनी छोटी सी अंगुली धरकर बतला देते थे। उस से गोपियां आनन्दित होतीं थीं।

चैतन्यस्तवकल्पवृक्ष भी इन ने रचा है। उस के कुछ श्लोक चैतन्यचरितामृत में कहीं २ उठा के लिये हैं।

श्रीजीवगोस्वामी।

ये रूप और सनातन गोस्वामी के भतीजे हैं। अपने दोनों ताऊ के बनाई सब पुस्तकों की व्याख्या इन ने की है। आप भी ये नाना ग्रन्थों के प्रणेता हैं। इन के रचित ग्रन्थों में भागवतसन्दर्भ, गोपालचम्पू और हरि नामामृत व्याकरण ये तीन ग्रन्थ विशेष प्रचलित हैं।

गोपालचम्पू संवत् १६४५ अर्थात् शाके १५१० में बना। यथा—

" संवतपञ्चकवेदषोडशयुतं शाकं दशेष्वेकभा-
ग्जातं तर्हि तदाखिलं विलिखिता गोपालचम्पूरियम्।
वृन्दाकाननमाश्रितेन लघुना जीवेन केनापि त-
द्वृन्दाकाननमेव * संहतिकलां धत्तां समन्तादिह॥"

अर्थात्—जीव नामक किसी क्षुद्र जीव ने संवत १६४५ शक १५१० में वृन्दावन में बस के यह जो गोपालचम्पू निर्माण की वह वृन्दावन तुल्य सब ओर सङ्गसः कला धारण करे।

इन ग्रन्थों के बना चुकने पर जीवगोस्वामी ने गोपालविरुदावली नाम पुस्तक बनाई।

कवि कर्णपूर।

इन का मूल नाम परमानन्द दास है। चैतन्य महाप्रभु इन्हें पुरीदास कह के पुकारते थे। इन के बाप का नाम शिवानन्द सेन था। इन का जन्म १४४८ शक में हुआ। नवद्वीप मण्डलान्तर्वर्त्ती काचड़ापाड़ा नामक गांव में आजलों इन के वंशज सन्तान विद्यमान हैं। सातवें वर्ष की वय में महाप्रभु के चरण के अंगूठे को मुख में डाल कर चूसा था, उसी के प्रभाव से ये अद्भुत कवित्वशक्ति सम्पन्न हुए। उसी अवस्था में इन ने जो श्लोक बना के पढ़ा वह नीचे दर्साया जाता है—

" श्रवसोः कुवलयमक्ष्णोरंजनमुरसो महेन्द्रमणिदाम।
वृन्दावनरमणीनां मण्डनमखिलं हरिर्जयति॥"

अर्थात्—वृन्दावन वासी वनिताओं के कानों में नील कुमुद सदृश, आंखों में अंजन मंजुल, वक्षःस्थल में महेन्द्र नीलमणि की माला तुल्य लगते उन स्त्रियों के समग्र भूषण का काम देते हुए श्रीकृष्णचन्द्र का जयकार है।

* इस १६ पद इस पद का अर्थ १६ना है।

इस श्लोक में व्रजबालाओं के कर्णभूषण का वर्णन पहिले आया है, ऐसी उपलक्ष से स्वयं महाप्रभु ने इन्हें कवि 'कर्णपूर' ऐसी प्रसिद्धार्थ उपाधि दी। इस विषय का विशेष वर्णन चैतन्यचरितामृत अन्तिम खण्ड के सोलहवें परिच्छेद में लिखा है।

इन के रचित ग्रन्थों के नाम ये हैं—

आर्याशतक * चैतन्यचरितामृत, चैतन्यचन्द्रोदय नाटक, आनन्द वृन्दावनचम्पू, कृष्णलीलोद्देशदीपिका, गौरगणोद्देशदीपिका और अलङ्कार-कौस्तुभ॥

इन में से जिस २ पुस्तक की जो २ मिति निर्दिष्ट है उसे नीचे लिखता हूं।

"वेदा रसाः श्रुतय इन्दुरिति प्रसिद्धे शाके तथा शुचिशुचौ सुभगे च मासि।
वारे सुधा किरणनाम्न्यसितद्वितीयातिथ्यन्तरे परिसमाप्तिरभूदमुष्य॥"

अर्थात्—शके १४६४ ज्येष्ठमास कृष्णपक्ष द्वितीया तिथि सोमवार को चैतन्यचरितामृत बनकर संपूर्ण भया।

शक १४९९ में चैतन्यचन्द्रोदय नाटक निर्माण हुआ। यथा—

"शाके चतुर्दशशते रविवाजियुक्ते गौरो हरिर्धरणिमण्डल आविरासीत्।
तस्मिंश्चतुर्नवतिभाजितदीयलीलाग्रन्थोऽयमाविरभवत्कतमस्य वक्त्रात्॥"

अर्थात्— १४०७ शक में गौरहरि (चैतन्यदेव) पृथ्वी में अवतीर्ण भए और १४९४ शक में उन की लीलावर्णनात्मक यह ग्रन्थ किसी के मुख से कथित भया॥

ये ग्रन्थकर्त्ता हों के जिन दिनों ग्रन्थ बनाने लगे, उन्हीं दिनों महाप्रभु अन्तर्धान हो गये थे। इस कारण सुबन्धु ने जैसे वासवदत्ता के आरम्भ में विक्रमादित्य के वियोग से हाय किया है, वैसेही इन ने भी आनन्द वृन्दावन चम्पू के आरम्भ में महाप्रभु के वियोग की आह मारी है। यह वियोगसूचक श्लोक यथा—

> "गतस्य स्वाभीष्टं पदमहह चैतन्य भगवन्-
> परीवारं पश्चाद्गतवति च तस्मिन्निजपदम्।
> विलुप्ता वैदग्धी प्रणयरसरीतिर्विरहिता
> निरालम्बो जातः सुकविकविताया परिमलः॥"

अर्थात्—भगवान् चैतन्य देव के परिवार में से जिस का जिस स्नेह

* [illegible]

[illegible]

में जाने का अभिलाष था, वह उस लोक को चला गया। तत्पश्चात् आप भी निज धाम सिधारे। अहो! अब विद्वत्ता में परिपक्वता जगत् उड़ गई। प्रीति जनित सुख की धारा रुक गई और सत्कवि की कवि रूपी पुष्प के आमोद का रसिक कोई न रहा।

कोई २ आनन्द वृंदावन चम्पू को रूप गोस्वामी का विरचित बतला हैं; पर यह उन की भूल है। जान पड़ता है कि उन्हों ने उस ग्रन्थ के अन्ततः उस के इस श्लोक को भी न देखा होगा।

"चैतन्यकृष्णकरुणानिधि वाग्विभूति-
स्तन्मात्रजीवनधनस्य जनस्य पुत्रः।
श्रीनाथपादकमल स्मृतिशुद्धबुद्धि-
श्चम्पूमिमां रचितवान् कविकर्णपूरः॥"

अर्थात्—मेरे पिता के प्राणधन श्रीकृष्ण ही थे। मेरी भी उन्हीं के चरण कमलों के ध्यान से बुद्धि शुद्धि भई है। श्रीकृष्ण के अवतार चैतन्य देव की दया से वचनरचनाशक्ति मुझे प्राप्त भई है। मेरा नाम कर्णपूर कवि है। मैंने यह चम्पू बनाई है।

कृष्णदास कविराज।

ये रूप सनातन आदि गोस्वामियों के समसामयिक थे। बंगाली बोली में निज रचित चैतन्यचरितामृत के बीच इस बात की सूचना वे आप देते हैं। उस सूचना का उल्था यह है।

जय जय नित्यानन्द जय कृपामय। जाते हम पाइय रूप सनातन आश्रय॥
जाते हम पाइय रघुनाथ महाशय। जाते हम पाइय श्रीस्वरूप आश्रय।
पाइ सनातन कृपा हम पाइय भक्तिसार। श्रीरूपकृपागुण हम पाइय रसपार।

इनने अपने बनाये ग्रन्थ में मिति का यों निर्देश किया है—

"शाके सिन्ध्वग्निबाणेन्दौ ज्येष्ठे वृन्दावनान्तरे।
सूर्याह्वेऽसितपञ्चम्यां ग्रन्थोऽयं पूर्णतां गतः॥"

अर्थात्—१५२७ शक ज्येष्ठ कृष्ण पञ्चमी रविवार को यह ग्रन्थ वृन्दावन में बन के सम्पूर्ण भया।

इन का निर्माण किया 'गोविन्द लीलामृत' नाम एक संस्कृत ग्रन्थ है; उस के पढ़ने से इन की कविताशक्ति समीचीन रूप से परिचित होती है। कृष्णकर्णामृत पर इन ने भी एक तिलक किया है। उस के आरम्भ का श्लोक यह है—

सिंहात्मजः" अर्थात्—श्रीवृन्दावन की केलि के वर्णन रूपी कार्य में श्री दिव्य सिंह के पुत्र। ये दिव्य सिंह हरिकीर्तन के समय जो भजन विशे कर के गाये जाते हैं, उन के रचयिता गोविन्द कविराज के पुत्र हैं।

कर्णानन्द रस छठें निर्यास में इस भांति लिखा है। यथा—

प्रभु * पदपद्म मरन्दमद, छाके गाढ़ मिलिन्द।
दिव्यसिंह कविराज हैं, जासु पिता गोविन्द † ॥

गोविन्द दास के रचित निरे संस्कृत के गद्य पद्य यद्यपि हम ने ना देखे तौभी ये अच्छे सहृदय कवि श्रेष्ठ थे। यह अवश्यही प्रतीति के योग है; क्योंकि यदि ये तादृश न होते तो इन की कवीन्द्र पदवी न होती सुनते हैं कि वसन्त राय ने इन के बनाये कितने श्लोक लिख श्रीवृन्द वन धाम में श्रीजीव गोस्वामी के संमुख ल्याके धरे; उन्हें उन गोस्वामि के सेवक वैष्णवों ने पढ़ा और प्रसन्न होके गोविन्द को कवीन्द्र की उपाधि दी। कर्णानन्द के छठें निर्यास में जो चौठी है उस में का श्लोक यह है—

"श्रीगोविन्दकवीन्द्रचन्दनगिरेश्चश्चद्वसन्तानिले-
नानीतः कवितावलीपरिमलः कृष्णेन्दुसम्बन्धभाक्।
श्रीमज्जीवसुरांघ्रिपाश्रयजुषो भृंगान्समुन्मादयन्
सर्वस्यापि चमत्कृतिं व्रजवने चक्रे किमन्यत्परम्॥"

अर्थात्—कविवर श्रीगोविन्द चन्द्र रूपी मलयाचल से कविता रूपी सुगंध को वसंतराय रूपी वसंत ऋतु का पवन पा कर चल के श्रीकृष्ण चन्द्र के धोरे ले आया श्रीमान जीव गोस्वामी रूप कल्पवृक्ष के आश्रित भक्त रूपी भृंगों को समीचीन रूप से उन्मत्त करते इस सुगंध ने व्रजवन में सभी को चमत्कृत कर दिया है। अब इस से बढ़कर और क्या होना चाहिये ?

वेणीदत्त।

इन के पिता का नाम जगज्जीवन था। ये शाहजहां बादशाह के हम जमाना थे। इन ने शके १५३९ अर्थात् खीष्टाब्द १६१७ ई० में 'पद्यवेणी' नाम पद्य पुस्तक संकलित की। उस में नाना कवियों और कवितानियों के बनाये पद्य संगृहीत हैं। उस में सुबन्धु का बनाया यह श्लोक उठाया है—

* यहां पर प्रभु शब्द में प्रभु [illegible]

[illegible]

" अक्षमालाप्रवृत्तिज्ञा कुशासनपरिग्रहा ।
ब्राह्मीव दौर्जनी संसद्वन्दनीया समेखला ॥ "

अर्थात्—दुर्जन मण्डली ब्रह्ममण्डली तुल्य माननीय है क्योंकि दोनों के पक्ष में, अक्षमालाप्रवृत्तिज्ञा, कुशासन परिग्रहा और समेखला ये तीनों विशेषण घटित होते हैं। देखो; इधर दुर्जन अक्षम असहा, आलाप-वृत्तिज्ञ=वा व्यापार को जानते हैं । उधर ब्राह्मण लोग भी अक्ष=रुद्राक्ष की माला का अपवृत्तिज्ञ=फेरना जानते हैं। इधर दुर्जन कु=खोटे,शासन-शिक्षा का परिग्रह=ग्रहण करते हैं अथवा उन की परिग्रह=जोड़, कुशा-सन=कुशिक्षित होती हैं। उधर ब्राह्मण लोग कुशासन=कुश के आसन, परिग्रह=ग्रहण करते हैं। इधर दुर्जन समे=सीधे सूधे साधुजन के पक्ष में खला=खल होते हैं । उधर ब्राह्मण लोग भी समेखला=मेखला पहिनते हैं।

निम्न लिखित श्लोक गौरी नाम की किसी कवितानी स्त्री का बनाया जान के संगृहीत हुआ है ।

" कालिन्दीयति कज्जलीयति कलानाथाङ्कमालीयति
व्यालीयत्यपिमण्डलीयति मुहुः श्रीकण्ठ कण्ठीयति ।
शैवाली यति कोकिलीयति महानीलाभ्रजालीयति
ब्रह्माण्डे रिपुदुर्यशस्तव नृपाबद्धारव्चूड़ामणे ॥ "

अर्थात्—हे राजाओं के शिरोभूषण मणि ! आप के शत्रुओं की दुष्कीर्ति ब्रह्माण्ड में यमुना, कज्जलपुंज, चन्द्रकलंकरेखा, कालव्याल, सर्पों के लेंहड़े और श्रीशम्भु के गले में गरल का काला चिन्ह, काले रंग के सिवार, कोकिल और घन घोर काली घन घटा इन सब पदार्थों के — में प्रतिभात होती है ॥

इति तृतीय परिच्छेद समाप्त हुआ ।

———

चतुर्थ वा अन्त्यकाल।

विश्वनाथ चक्रवर्ती।

मुर्शिदाबाद के नज़दीक मौज़ा सयोदाबाद में ये पैदा हुए थे। ऐसा अनुमान होता है १५५० शक के कुछ इधर वा उधर जीवन्त थे क्योंकि इन ने भागवत पर सारार्थदर्शिनी नाम जो व्याख्या लिखी उस में आप कहा है कि मैं ने लोकनाथ स्वामी से शिक्षा पाई। यथा—

"प्रणम्य श्रीगुरुं भूयः श्रीकृष्णं करुणार्णवम्।
लोकनाथं जगच्चक्षुः श्रीशुकं तमुपाश्रये॥"

अर्थात्—प्रथम श्रीयुत जगत् की आंख खोलनेवाले लोकनाथ करुणामय श्रीकृष्णचन्द्र को प्रणाम कर के नामाङ्कित श्री शुकदेवजी का मैं शरण ग्रहण करता हूं।

किसी २ का कहना है कि इन ने नरोत्तम ठाकुर के भतीजे से दीक्षा ली थी, पर इस कहतूत का कोई पक्का मूल नहीं मिलता। सो जो कुछ हो, नरोत्तमठाकुर, श्रीनिवास आचार्य, श्यामानन्द आचार्य, लोकनाथ गोस्वामी, भूगर्भ गोस्वामी, रामचन्द्र कविराज ये सब जन समान समय में हुए हैं; इस में संदेह नहीं। वृन्दावन में जीव गोस्वामी और गोस्वा[मी] गोपालभट्ट इत्यादिकों में से अनेकों से इन की भेंट भई थी। इन ने कृष्ण लीला के वर्णन में 'भावरसामृत' नाम काव्य जो गोविन्दलीलामृत [की] छाया है बनाया। श्रीमद्भागवत, आनन्द वृन्दावन चम्पू और गोपाल तापनी आदि ग्रन्थों पर इन ने टीका भी बनाई है। तदतिरिक्त रागवर्त्म चंद्रिका, चमत्कारचंद्रिका, प्रेमसम्पुट, गौरगणोद्देशचंद्रिका, स्तवामृत लहरी, गोपीप्रेमामृत, माधुर्यकादम्बिनी आदि कितने एक और ग्रं[थ] निर्माण किये।

बलदेव विद्याभूषण।

ये ऊपर उक्त विश्वनाथ चक्रवर्ती के शिष्य हैं। इन ने श्रीवृन्दावन वास कर गोविंददेव के तुष्ट्यर्थ वेदांत सूत्रों पर गोविंदभाष्य नाम व्याख्या लिखी और रूप गोस्वामिकृत गोविंद विरुदावली पर भी टीका [बनाई] है।

राजधानी जयपुर में पच्छाहं के पण्डितों को शास्त्रार्थ में जीतकर इन ने उस के पुरस्कार में गौड़ देशवासी ब्राह्मणों का प्राचीनकाल से चला आया, गोविन्ददेव इत्यादि श्रीभगवन्मूर्ति की सेवकाई का पद जो उन दिनों उन सभों के हाथ से किसी कारण से निकल जाने चाहता था फिर यथापूर्वक बचा रखने पाया। इन ने एक और भी शुभनाम का काम किया: जिस से चैतन्यसम्प्रदाय के वैष्णवों के बीच ये विशेष आदरणीय हुए वह कार्य यह था कि उसी स्थान में इन ने महाप्रभु की एक [illegible] प्रकाशित की।

इन ने रूप गोस्वामी कृत उत्कलिकावल्लरी की एक टीका बना के शक १६८६ में समाप्त की। यह मिति उस टीका की समाप्ति में लिखी है। इस से सूचित होता है कि यह पुस्तक उन ने बुढ़ापे में बनाई होगी।

श्रीकृष्ण सार्वभौम।

ये नवद्वीप में रहते थे। वहां के राजा रामजीवन * की आज्ञा से इन ने 'पदांकदूत' नाम एक खण्डकाव्य रचा। यह काव्य शक १६४५ में बना; यह बात काव्य की समाप्ति के श्लोक से विदित होती है। यथा—

"शाके स्वायकवेदषोडशमिते श्रीकृष्णशर्माऽत्र य-
स्यानन्दप्रदनन्दनन्दनपदद्वन्द्वारविंदं हृदि।
चक्रे कृष्णपदाङ्कदूतरचनं विद्वन्मनोरञ्जनं
श्रीलश्रीयुतरामजीवनमहाराजाधिराजाज्ञया॥"

अर्थात्—श्री श्रीयुत रामजीवन महाराज के आज्ञानुसार श्रीकृष्ण शर्मा ने स्वहृदय देश में आनन्ददायक नन्दनन्दन के पदारविन्द द्वय के ध्यान निमित्त विद्वज्जन मनोरञ्जन कृष्णपदाङ्कदूत नाम काव्य १६४५ शक में निर्माण किया।

शान्तिपुर के गोस्वामी भट्टाचार्य आदिकों ने इस पदांकदूत के [illegible] २ तिलक किये हैं। नैयायिक पण्डित महाशय लोग इस काव्य को बड़े आदर से अपने पास रखते हैं।

श्रीकृष्ण तर्कालङ्कार।

इन ने दायभाग, [illegible] और [illegible] पर जो टीका [illegible] हैं वे बंगाल भर में सादर परिगृहीत हैं। इन ने [illegible] नाम एक [illegible] रचा है। उस के आरम्भ का श्लोक यह है—

* ये राजा कृष्णचन्द्र राय के बाबा थे।

"रामो रामाभिरामो रमितकरभरैरात्त रामाविरामा-
स्तो मोमुह्यमानो झटिति वियति तं वीक्ष्यचन्द्रं तदीयैः।
सूरोऽयं वा स्मरो वा स्मररिपुरपि वा स्वर्मणिर्वा विभाति
प्राणेशीवक्त्रचन्द्रः किमु गगनचरस्तर्कयामास चैतत् ॥"

अर्थात्—स्त्रियों के नयनाभिराम राम अपनी प्यारी से विरहित किसी समय बैठे थे। उसी वेला आकाश में चन्द्र उदय भया। यद्यपि पहिले उस के अनन्त किरणनिकर से चैन मिलता था पर अब चन्द्रदर्शन से उलटा अनुभूत होने लगा कि तुरन्त तनु में इतना सन्ताप व्यापा जिस से वे सुधि नहीं सम्भाल सकते थे। उस से उन्हें भ्रम भया कि क्या यह सूर्य, स्मर अथवा स्मरवैरीशिव हैं किंवा मेरी प्राणप्यारी का मुखचन्द्र स्वर्ग का रत्नोपम हो के गगन में उदय तो नहीं हुआ है।

जान पड़ता है कि इन ने पदाङ्कदूत देख के उसी की छाया से "चन्द्रदूत" रचा क्योंकि दोनों के भाव परस्पर मेलखाते हैं। देखो; चन्द्रदूत का ३७ वां श्लोक—

" भीतिश्चास्या मनसिजभवा मत्कथावारणीया
शब्देनापि क्षयमुपगता स्याद्विशेपस्य शङ्का ।
सामग्री चेत् फलविरहिणो नानुयोगः समन्तात्
को जानीते विधुरितमहाभाव मादीश्वरस्य ॥"

अर्थात्—मेरी मदनबाधा की चर्चा उस के साम्हने मत चलाइयो। क्योंकि उस के मन में अबलों जो भावी कुशल की आशा लगी होगी वह आप के आप्तवाक्य से मद्विषयक अस्वास्थ्य श्रवण करके फिर स्वास्थ्य की प्रत्याशा न उदय होने के कारण संभव है उच्छेद को प्राप्त हो जावे जिस से मुझे उस के और प्राणधारण में जोखिम जान पड़ता है। ईश्वर परित्राण करेगा; इस भरोसे से उपत करके बरबस अनर्थोत्पादन की सामग्री न जुटा लेना चाहिये क्योंकि कार्य के उत्पन्न होने में जितने कारण अपेक्षित होते हैं; उन की सामग्री को जब जीव निज प्रयत्न से सम्पादित कर चुकता है; तब कार्य के उत्पन्न कर देने में विधाता रंचक भी विलम्ब नहीं करता है। फल चाहे उत्तम हो अथवा मन्द हो। देखिये; आप जब मेरी उस प्राणप्यारी के प्राणसंहार का कारणरूप मेरी विरहबाधा का समाचार सुना दें और उस से वह घबड़ा के निज प्राण त्यज दे तौ क्या करूंगा ? क्या ईश्वर से पूछना होगा कि मेरी प्यारी का प्राण उस ने क्यों नहीं किया ? न परित्राण करने का दोषारोप भी

भिवाल पर नहीं हो सकता। कारण; वह अपने किसी स्वार्थ की अभि-लाषा से किसी का भला या अनभला नहीं करता है। यदि उस में उस का कुछ स्वार्थ नहीं है तो प्रवृत्त काहे को होता है? इस शंका का समाधान यह है कि स्वार्थ ही प्रवर्त्तक नहीं माना जाता अपितु न्याय और धर्म भी प्रवर्त्तक होते हैं। अनादिकाल से ईश्वर जीवों के जैसे २ पुण्य कर्म देखता जीवों की ही भलाई के लिये न्यायानुसार कारणों के इकट्ठे होने पर प्रतिफल उत्पन्न करदेता है। स्वार्थशून्य जगदीश्वर के मन में न जैसे अदृष्ट को फलीभूत करना अभिप्रेत है तिस का उसी को छोड़ और को परिज्ञान प्राप्त नहीं है। संभव है सम्प्रति हम दोनों प्रेमीजनों पर अदृष्ट खोटा आ जुटा हो। अतः मेरी प्यारी के निकट मेरी विरहवेदना का आवेदन अनावश्यक है।

पदाङ्कदूत के "सामग्री चेत्सफल विरह" इत्यादि प्रतीकवाले ३१ वें श्लोक की और पुनश्च चन्द्रदूत का ४२ वां श्लोक—

> "श्रुत्वात्त्वत्तः सहितवचनं यद्रिपौ क्वापि नाते-
> नाम्रा प्रेम्णा सहजहितता वेदनीया न तत्त्वम्।
> व्याप्यस्थाने यदि कथमपि व्यापिनो न प्रसिद्धि-
> र्व्याप्याज्ञानं न भवतितरां व्यापकाभावसिद्धौ॥"

अर्थात्—न तुम्हारा कोई मित्र है, न शत्रु है, तथापि तुम्हारे प्रेममय वचन सुन के तुम्हें स्वभाव से सर्वहित निरे नाम मात्र के लिये कह ते हैं। यथार्थ में तुम्हारा सर्वहितत्व उस से सिद्ध मानलें यह कोई बात है। क्योंकि जैसे वह्नि की धूम पर व्याप्ति का अभिज्ञान जिसे नहीं है, वह्नि की धूम पर व्यापकता का भी परिचय नहीं रहता है और जब व्यापकता का परिचय नहीं है, तब वह्नि से धूम की व्याप्यता का बोध या भ्रमहोना है। एतादृश निर्बोध जन के मन में धूम से वह्नि का ज्ञान नहीं होता है। यों ही जीवों पर तुम्हारे सर्वहितत्व की तुम्हारे वचनमात्र पर व्याप्ति का परिचय हमें नहीं है। उस के परिचय के भूयोदर्शन की अपेक्षा है। अतः सर्वहितत्व की व्यापकता का बोध नहीं होता है। सुतराम् हित वचन की व्याप्यता की भी प्रतीति उपजती है। फिर तुम्हारे हित वचन मात्र से कोरा तर्क कर के हम और सर्वहितत्व का निश्चयात्मक परिज्ञान क्यों कर प्राप्त कर सकें?

पदाङ्कदूत के "व्याप्याज्ञानात्प्रभुरुभयं व्यापकव्याप्तिसिद्धौ" आदि प्रतीकवाले २१ वें श्लोक की छाया है।

थुरेश उस चीठी को पढ़ के मुसकुराए और तुरन्त यह श्लोक बना के स के पास लिख भेजा।

" वाल्मीकेरजनि प्रकाशितगुणा व्यासेन लीलावती
वैदर्भी कविता स्वयं वृतवती श्रीकालिदासं वरम्।
यासूतामरसिंहशंकुधनिकान् सेयं जरानीरसा
शून्यालंकरणा स्खलन्मृदुपदा कं कं दितौ नाश्रिता ॥"

अर्थात् – वैदर्भी वृत्तिवाली कविता कन्या, वाल्मीकि मुनि से जन्मी। यास के साथ लड़कपन के खेल खेली। तरुणाई में कालिदास को व्याही गई। समय पा के अमर सिंह, शंकुक, धनिक इत्यादि बेटे जनी। कविता वनिता के साथ निकट नाता होने के कारण वे लोग वास्तव में कवि कहे जा सकते हैं। अब वह बुढ़ा गई। वे रस, चटक मटक और हाव भाव जाते रहे। गहने (अलंकार) भी हाथ से निकस गये। उस का कोई निकट नतैत जीवता नहीं रहा। धीरे २ मग में डगमगाते डग भरती आश्रय पाने के लिये घर २ पधारती है।

इस श्लोक का व्यंग्यार्थ यह है कि आजकाल कविता नायिका निराश्रय होने के कारण किसी के पास (चोखी) चटकीली नहीं मिलती है। नाम के चाहे कितनेही कवि हुआ करें।

दिग्विजयी उस पत्र को पढ़कर जयपत्र की आशा परित्याग कर तुरत चले गये।

भारतचन्द्र राय।

ये भारद्वाज गोत्री मुखोपाध्याय वंश में जन्मे थे। गांव गिरांव और रुपये पैसे इन के पास बहुत से होने से राय अर्थात् राजा की पदवी को प्राप्त हुए थे। इनके पिता नरेन्द्रनारायणराय पेंडुआ में जो वर्द्धमान मण्डल के 'भूरसुट' खण्ड में है रहते थे। नरेन्द्रनारायणराय के चार बेटे थे। जेठे चतुर्भुज राय, मझले अर्जुन राय, सझले दयाराम और सब से छोटे भारतचन्द्र राय थे।

शक १६३४ में इन का जन्म हुआ। वर्द्धमान के प्रसिद्ध राजा 'कीर्तिचन्द्र' राय की माता विष्णु कुमारी (वेसनकुमारी) ने नरेन्द्रनारायण का राज्य छीन लिया था। भारतचन्द्र राय ने अपनी बनाई गौड़ 'रसमंजरी में' तिस का कुछ थोड़ार मारा है। उस का

यथा-राजवल्लभ के काज, कीर्तिचन्द्र ने छीना राज।'

भारतचन्द्र राय ने अपनी पर्पौती छिन जाने पर नदिया के महाराज
[र] विक्रमादित्यकृष्णचन्द्रराय का आश्रय लिया। उन्हीं महाराज
[की] आज्ञा से इन ने " रसमंजरी " और " अन्नदामंगल विद्यासुन्दर " *
[ना]म गौड़भाषा में प्रसिद्ध काव्य की ये दो पुस्तकें बनाईं। संस्कृत की
[न] होने के कारण इन दोनों पुस्तकों में से संस्कृत के कवियों के वर्णना-
[त्म]क प्रस्तुत पुस्तक में कुछ अंश उठाना नहीं चाहता हूं परन्तु कवि के
[सम]य निरूपण में उपयोगी अन्नदामंगल के एक अंश का उल्था कर के
[नी]चे लिखता हूं। यथा—

शाके सोरह सौ चौहत्तर। भारत रच्यो अन्नदामंगर (ल)॥

[इ]स अर्थ का पद्य अन्नदामंगल की समाप्ति में लिखा है। परलोक
[प्र]स्थान होने से कुछ दिन पहिले इन ने संस्कृत के नाटक की धारा पर
['चण्]डीनाटक' नाम एक नाटक बनाना आरम्भ किया था पर शोक की
[बा]त है कि उसे पूरा न कर सके। संस्कृत के नाटकों में पात्रों के भेद से
[सं]स्कृत और प्राकृत येही दो बोली मिलती हैं परन्तु इन ने नई चाल
[नि]काली कि नाटक में प्राकृत की सन्ती हिन्दी रक्खी है। इन महाकवि
[क]ी कविता रचना में कैसी कुछ दक्षता थी, उस के प्रकट होने के लक्ष्य
[स]े इन के बनाये उस नाटक के प्रारम्भ से टुक उठा के मैं नीचे लिखता हूं।

[स]ूत्रधार और नटी का राजसभा में प्रवेश। सूत्रधार का वचन-संस्कृत।

" सङ्गायन् यदशेषकौतुककथाः पञ्चाननः पञ्चभि-
र्वक्त्रैर्वाद्यविशालकैर्डमरुकोत्थानैश्च संनृत्यति।
या तस्मिन् दशबाहुभिर्दशभुजा भालं विधातुं गता
सा दुर्गा दशदिक्षु वः फलयतु श्रेयांसि निःश्रेयसे ॥"

अर्थात्—श्रीदुर्गाजी के कौतुकमय निखिल चरित्रों को बड़े २ बाजे
[ब]जाने डमरु डमकाते श्रीशिवजी निज पांचों बदनों से गाते नाच रहे
[थे]। उसी रङ्ग में जो दशभुजा श्रीदुर्गादेवी आप चली आके अपनी दशों
[भु]जाओं से ताल देने लगीं वे तुम्हारे मोक्षपथ की दशो दिशाओं में
[कल्]याण कारिणी हों।

नटी का वचन—हिन्दी †।

सुनो सुनो ठाकुर, परम विशारद चतुर, सभासद सकला।
नूतन नाटक, नूतन कविकृत, तहँ हम नूतन अबला॥

---

* इतना बड़ा एक ही पुस्तक का नाम है। (अनुवादक)

† मूल में बङ्गला को छिपकर हिन्दी को इस लिये उस्का ऐसे लिखा है। (अनुवादक)

कैसे बताउब, भाव भवानी के, मोहिं भयो भयभारी।
दनुज दलनलगि, धरणी तलमधि, देवी लीलाअवतारी॥
गुरुसमपण्डित, हरिसमगुण मण्डित, हौ तुम भटभारे।
कृष्णचन्द्रनृप, राजशिरोमणि, भारतचन्द्र विचारे॥

इन ने गङ्गा की स्तुति में गंगाष्टकभी बनाया है। उस में का एक श्लोक यह है—

"यदम्बुनाशितुं (?) मलं महानलः सुशीतलं
प्रयातिनीचमार्गकं ददातिनित्यमुच्चताम्
हरेः पदाब्जनिर्गतां हरित्वमात्रदायिनीं
नमामिजन्हुजां हितां कृतान्तकम्पकारिणीम्॥"

अर्थात्—जिन का जल अतिशीतल है पर पाप के भस्म करने प्रचण्ड पावक की नाईं समर्थ है। आप निचास में ढुलता है पर आप दर्शस्पर्श करनेवालों को सदा उच्च (स्वर्ग) पद देता है। आप तो विष्णु के चरणकमल से निकला है पर अपना सेवन करनेवालों को साक्षात् विष्णुरूप बना देता है। जिन के भय से यमराज भी कांपते हैं ऐसी हितकारिणी श्री गंगाजी को मैं नमस्कार करता हूं।

द्विज वैद्यनाथ।

इन ने शक १७०६ में "तुलसीदूत" नामक एक खण्डकाव्य बनाया। यथा

"शाके तर्कनभोहयेन्दुगणिते श्रीवैद्यनाथोद्विजो
गोपीकैरवकाननप्रियकलानाथाङ्घ्रिपाथोरुहम्।
ध्यायंस्तच्चरणारविन्दरसिकः प्रज्ञावतां प्रीतये
प्रीत्यै तस्य चकार चारु तुलसीदूताख्यकाव्यं महत्॥"

अर्थात्—श्रीवैद्यनाथ द्विज ने गोपी रूपी कुमुदवन के आह्लाद दायक चन्द्रतुल्यप्यारे श्रीकृष्णचन्द्र के चरणकमल का ध्यान धरे और उसी के मकरन्द का रसिक बना रहकर श्रीकृष्ण और उन के भक्त विद्वज्जनों के प्रीत्यर्थ सुन्दर तुलसीदूत नाम बड़ा काव्य बनाया॥

इस काव्य का प्रथम श्लोक यह है—

"नाथे याते मधुपुरमतिक्षोभविभ्रष्टचित्ता
गोपी काचित् कलयति सखीरन्तरङ्गाः समीपे।
मापत्यागादतिगुरुतरे तस्य बन्धोर्वियोगे
केन स्थेयं मुहुरिति वचो व्याकुला सा बभाषे॥"

कवि जड़ता के निवृत्त होने अनन्तर सज्जनों की मनोहर सुचाल पके चलता अनेक संलग्न रामभक्त विद्वज्जनों की सत्संगति से महाभाग्यवा भया है। वैशाख में उत्पन्न पुष्पों के मकरन्द्ररस की नाईं प्रेम मधुमय यह काव्यपुष्पोपहार माधव (श्रीकृष्ण) को माधव कवि ने चढ़ाया है उस की प्रसादी को पुण्यात्मा प्राणी अपने कर्णरूपी पात्रों के द्वारा प करें ।

"इति तालित नगरनिवासि श्रीमाधवकवीन्द्रभट्टाचार्यविरचितमुद दूतं खण्डकाव्यं समाप्तम् । "

राधामोहन विद्यावाचस्पति ।

ये शान्तिपुर के गोस्वामी भट्टाचार्य के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन कविताई में विशेष प्रसिद्धि नहीं है। न्याय, धर्मशास्त्र और पुराण आ विषयों में ये बड़े विद्वान थे परन्तु पदाङ्कदूत पर टीका आदि इन कृति देखने से इन्हें कवियों की श्रेणी में गिने विना मन नहीं मानता। शक १७३७ तक जीवते थे।

श्रीशङ्कर ।

इन की उपाधि वैद्यचन्द्र थी। यह उपाधि इन्हें नदिया की राजस में वैद्य होने के हेतु राजा ईश्वरचन्द्र से मिली थी। ये नवद्वीप मण्डल 'नवला' नामक ग्राम में रहते थे। कविता की रचना में बड़े निपुणात निदर्शन के लिये नीचे एक कथा लिखी जाती है।

एक समय ये राजा ईश्वरचन्द्र से छुट्टी लेकर नवला नाम गांव में अ घर चले गये थे। उन्हीं दिनों राजा ने उन के पास एक चीठी, ना और रुपये भेजे। पत्र के हाथ में आतेही तुरन्त इन ने एक श्लोक ब के राज के पास लिख भेजा। यथा—

"पवित्रकमलासङ्गा समुद्रानुग्रहप्रदा ।
शङ्करस्योत्तमाङ्गस्था गङ्गेव तव पत्रिका ॥"

अर्थात्—रुपयाहु नवरङ्गिहु, कृपासिन्धु समुहानि ।
सुरसरि सी तव पत्रिका, शङ्कर शिरधर मानि ॥

इति चतुर्थ परिच्छेद समाप्त हुआ।

वर्त्तमान काल।

'वर्त्तमान' यह शब्द सुनतेही लोग अवहेला करते हैं। इस का एक कारण यह जान पड़ता है कि 'दूर का ढोल सुहावना' होता है। इस स्वभावानुसार लोक प्रकृति पाई जाती है कि देशकाल से परोक्ष वस्तु के अनुभव में कुतूहल होता है और देशकाल में प्रत्यक्ष वस्तु का अनुभव नीरस लगता है। जैसा दृष्टान्त शतक में भी कहा है—

"निकटस्थंगरीयांसमपि लोको न मन्यते॥"

अर्थात्—पार्श्ववर्त्ती अतिमहान का भी आदर जगत् के लोग नहीं करते हैं।

दूसरा कारण यह भी संभव है कि दैव, रथचक्र की नाईं फिरता रहता है। कभी उन्नति होती है और कभी अवनति। आजकल हमारे भाग्य के दिन घटती के हैं। इसी से लोग काव्यकलाकौशल से विमुख हो रहे हैं तोभी पृथ्वी निर्बीज नहीं हो गई है। कहीं २ रसभावना चतुर सहृदय भावुक अवश्यही जीवते होंगे जो आधुनिक (वर्त्तमान) यह शब्द सुनतेही दोनों हाथों से दोनों कान कदापि न मूंदलेंगे किन्तु संमुख उपस्थित काव्य के गुणदोष की जांच अवश्य करेंगे। फलतः ऐसेही लोगों के जानकार्थ में वर्त्तमान काल के कवियों की नामावली गूंथता हूं। इस से यदि कुछ न हो तो दो बातें अवश्य सधती दीखती हैं। एक तो आधुनिक कवियों का मन न गिरने पावेगा। दूसरे मेरी देखा देखी और लोग भी वर्त्तमान और भविष्य कवियों के समय लिख रखने की परिपाटी चलावेंगे।

७ श्रीयुक्त कृष्णानन्द भट्टाचार्य।

नवद्वीप प्रान्त के अन्तर्वर्त्ती हलदामोहिपपुर इन का निवास स्थान है। इन्होंने श्लेष से ऐसा द्व्यर्थक काव्य बनाया है जिस का अर्थ एकबार रामायण पर और दूसरी बार अन्य अर्थ पर घटता है। उस के पढ़ने से बड़ा आश्चर्य होता है।

राघवपाण्डवीय में लिखा देखते हैं:—

[illegible]

"सुबन्धुबाणभट्टश्च कविराज इति त्रयः ।
वक्रोक्तिभङ्गिनिपुणा श्चतुर्थो विद्यते न वा ॥"

अर्थात्—सुबन्धु, बाणभट्ट और कविराज केवल यही तीनजन वक्रोक्ति (पेंच पेंच अथरेव के वचन) विलाससंवलित कविताई की रचना में चतु हो बीते । उन की समसरिका चौथा कोई जन है या नहीं इस में सन्दे है । मुझे उचित सूझता है कि इन भट्टाचार्य महाशय को उन के बीच चौथे जनकी गिनती हो । यदि इन दिनों हमारे देश में संस्कृत भाषा क यथोचित आदर होता तो इन भट्टाचार्य के बनाये इस व्याकरण का सर्व प्रचार हो जाता परन्तु इस देश का ऐसा अभाग्य है कि प्रचार न होने प्रत्युत इतना अग्राह्य हो रहा है कि विरले होंगे जो इस का नाम तक भी जानते हों ।

रचना चातुरी के परिचयार्थ इन के रचित काव्य का एक छोटासा श्लोक उठा के नीचे लिखता हूं । यह एकबार व्याकरण पर और दूसरीबार अन्य विषय पर घटित होता है । यथा—

"मुक्तहेतोः परेशश्चेद् द्वितीयोवर्ग इष्यते ।
यथा रत्नाकराच्छुक्ति लोभान्मण्या हि वञ्चितः ॥"

इस का व्याकरण के पक्ष में यह अर्थ है । *

मुक्त यह किसी विद्यार्थी का नाम था । उसे सम्बोधन कर के कहते हैं । हे मुक्त तोः परे=तवर्ग के किसी अक्षर के परे शश्चेत्=यदि शकार आवे, किंवा तोः चे परे † =तवर्ग के किसी अक्षर के परे चकार ‡ हो तो द्वितीयोवर्ग इष्यते=उस तोः तवर्ग के किसी अक्षर के स्थान में दूसरे वर्ग अर्थात् चवर्ग का अक्षर आदेश इष्ट है । इस का उदाहरण यथा—

रत्नाकरात् शुक्ति लोभान्मणयहि वञ्चितः=रत्नाकराच्छुक्ति×लोभान्मण्याहि वञ्चितः+ ।

---

* जिन्हों ने मुग्धबोध व्याकरण पढा है, वे इस स्थान पर उस के " सुचु,श्चिचु,शाद इस सूत्र का स्मरण करें ।

† इस पद्य में 'अमविच' इस पाणिनीय सूत्र से 'द्वितीयो' इस के दकार का इ हुआ है । (अनुवादक)

‡ इस पद्य में यहां चकार चवर्ग के अक्षर मात्र का उपलक्षण समझा जावे । (अनुवादक)

× यहां 'त' के स्थान में 'च' हुआ ।

+ यहां वन्+चितः था । नकार के स्थान में ञकार होने से वञ्चित हो गया ।
(अनुवादक)

ग्नन्यपद में अर्थ यथा*मुक्त हेतोः=मुक्ति के निमित्त; परेशः=परमेश्वर
। चेद् द्वितीयो वर्ग इष्यते=यदि अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष इस चतु-
र्ग में से मोक्ष को छोड़ शेष तीन पुरुषार्थों में से किसी को परमेश्वर से
ो कोई पाने की कामना करता है वह'यथा रत्नाकराच्छुक्ति लोभान्मणयाहि
ितः=ऐसा है जैसा कोई समुद्र से सीप पाने का लोभ करे
र रत्न पाने से वंचित रह जावे । तात्पर्य यह है कि मोक्षदाता पर-
श्वर से मोक्षभिन्न अन्य किसी विषय की प्रार्थना न करे ।

न भट्टाचार्य महाशय जी ने जो 'नाट्यपरिशिष्ट' नाम एक खण्ड
करण छपा के प्रकाश किया; उस में अपने को नदिया के महाराज
चन्द्र राय का सभासद बतलाया है । इस पुस्तक के बनने की मिति
क १७६० है । इन महाशय ने इस नाटक की प्रस्तावना में अपनी पहि-
न यों लिखी है । यथा—

"गुड़ग्रामि मण्डलेश्वर चतुर्धुरिणा महेशपुर नामक विषय निवासिना
द्वीपाधिपतेः श्रीयुतश्रीशचन्द्रनृपतेः सभैकरत्नेन श्रीमता कृष्णानन्द
ट्टाचार्येण" इत्यादि । अर्थात् नवद्वीपाधिपति श्रीयुत श्रीशचन्द्र राजा की
भा के एक रत्न गुड़ग्राम के निवासियों के मण्डलेश्वर चौधरी महेश्वर-
र नामक संस्थान के रहनेहारे श्रीमान् कृष्णानन्द भट्टाचार्य ने इत्यादि ।

व्याकरण की इस पुस्तक को छोड़ न्याय और धर्मशास्त्र आदिक
ना विषयों के और भी कई एक ग्रन्थ इन ने बनाये और विविध विद्या
बुद्धि के उत्साही सर्व गुणग्राही विद्वद्वर श्रीयुक्त ईश्वरचन्द्रविद्या-
गर महाशय के उभाड़ने से भट्टाचार्य जी ने 'शब्दशक्ति प्रकाशिका
रिशिष्ट' इस नाम का एक श्लोक बद्ध न्याय का ग्रन्थ निर्माण किया ।
ग्रन्थ संवत् १६१२ अर्थात् १७७७ शक में छपा । ऊपर जिस की
ात हुई वह व्याकरण ग्रन्थ बहुत दिन पहिले का बना है ।

श्रीयुक्त गङ्गाधर तर्कवागीश ।

ये कलकत्ते के प्रसिद्ध कवियों और पण्डितों में एक ही हैं । जयदेव
गीतगोविन्द की अनुकृति में इन ने हरगौरीलीला विषयक 'संगीत-
र्धेश्वर' नामक काव्य रचा है । उस के आरम्भ का श्लोक यह है ।

---

* यहां पर [illegible] इस कूप से भाव [illegible]
है वह बतला जावे । अनुवादक ।

" आधारादिशिरोगताम्बुजलसत्सत्कर्णिका सूज्ज्वला-
तासूताङ्गत पृथक् तनू विहरतः सर्वासुयासूज्ज्वलौ।
नित्यानन्दघने नियाय जगतामेकात्मनः स्वेच्छया-
गौरीशङ्करयोर्द्विधा गतवतोः क्रीड़ा जयत्विष्टदा॥"

अर्थात्--शक्ति और शक्तिमान् के अभेद से मायाशक्ति गौरी औ शक्तिमान् पुरुष शिव इन दोनों में कुछ भेद नहीं है तौ भी स्वेच्छा से भिन्नर रूप धारण कर के शक्त्यंश से गौरी और पुरुषांश से शङ्कर भ हैं। यों पृथक् २ प्रकाशात्मक रूप धारण कर के आधारादि चक्रों शिरोभाग में वर्त्तमान कमलों के अति उज्ज्वल खोसों (कर्णिकाओं) जो विहार करते हैं उन गौरीशङ्कर की नित्यानन्द वन में पहुंच के क्री सर्व जगत् को इष्टसिद्धि देनेहारी सर्वोत्कृष्ट होवे।

यह पुस्तक शक १७७२ में छापी गई।

प्रेमचन्द्रतर्कवागीश।

ये कलकत्ता संस्कृत कालेज में अलंकार शास्त्र के अध्यापक थे।इ का निवास स्थान राढ़ देश में था। १८०६ खीष्टाब्द अर्थात् बंगला १२ संवत् में ये जन्मे। इन के पूर्व पुरुषों में से सर्वेश्वर नाम किसी पुरुष अवसथ यज्ञ का अनुष्ठान किया था। तिस की चर्चा निम्नलिखि श्लोक में मिलती है।

"नाम्ना सर्वेश्वरः प्रोक्तो दानैः कल्पमहीरुहः।
अवसथीतिविख्यातो मन्त्रेऽवसथपालनात्॥"

अर्थात्--वेदोक्त अवसथ अग्निहोत्र के संरक्षण से आवसथी उपा धारी दानों से कल्पवृक्ष के तुल्य सर्वेश्वर इस नाम से प्रसिद्ध विद्वा जन हो गये हैं।

इन्हीं सर्वेश्वर के सन्तानों में रामचरण थे जिन ने साहित्यदर्पण प टीका रची है। प्रेमचन्द्र ने लड़कपन में किसी चटशाला में पढ़ा था। पी इक्कीस वर्ष की अवस्था होने पर कलकत्ते के संस्कृत विद्यालय में श्रीयु नाथूराम शास्त्री से अलङ्कार शास्त्र पढ़ा। ये जब बत्तीस वर्ष के हुए त इस विद्यालय के अध्यक्ष श्रीयुतविलसन् महाशय की कृपा से यह अलङ्कार शास्त्र पढ़ानेवाले पण्डित के पद पर नियुक्त हुए। तदनन्त तिस वर्ष तक उसी पद पर बने रहे और अच्छी प्रशंसा पाई। उ

...पनी जन्मकुण्डली देख इन्हें विदित हुआ कि अब मृत्यु दूर नहीं है तो मोक्षधाम काशीक्षेत्र में आबसे। यहां थोड़े दिन पीछे बंगला १२७२ के चैत्र की सौर १२ वीं तिथि को निर्वाण प्राप्त हुए।

...लङ्कारशास्त्र में इन की समसरिका कोई विद्वान् बंगाल देश में आज ...है वा नहीं इस में सन्देह है। * रसगंगाधर आदि ग्रन्थों से संग्रह कर के ...न्होंने साहित्य का एक ग्रन्थ का निर्माण आरम्भ किया था परन्तु यहां ...के लोगों की उस विषय के ग्रन्थ पर अभिरुचि न देख मन्द उत्साह हुए। अतः छोड़ दिया। इन ने कुमारसम्भव के उत्तरार्द्ध की टीका बनाने ...में हाथ लगाया था। दैवात् यह भी पूरी न होने पाई। इस टीका के ...आरम्भ में जो मंगलाचरण के दो श्लोक बनाये हैं सब के देखने के लिये ...में यहां उठाता हूं।

" चापल्यादिह वः सदास्मि विधुरा यास्यामि तातालयं
तातस्ते जनयित्रि कः स च महानीशो गिरीणां हि यः।
मातस्त्वं किमहो गिरीशदुहितेत्याभापभावे गुहे
मोन्मीलत्स्मितमुग्धनम्रवदना गौरी चिरं पातु वः॥
नन्दिन्नेषबुभुक्षितो वृषपतिर्भृङ्गिन्नभङ्गास्ति मे
भ्रातः पन्नगराज बन्धुषु भवानुत्कण्ठितो लक्ष्यते।
इत्येतांश्छलतो बहिर्गमयितुं बद्धादरो व्याहर-
न्दृष्टः सस्मितलज्जमद्रिसुतया शम्भुश्चिरं पातु वः॥"

अर्थात्—यहां तुम्हारे ऊधम से व्याकुल होगई हूं। अपने बाप के ...र चली जाऊंगी। हे माता तुम्हारा बाप कौन है? मेरे बाप गिरियों के ...प्रधान ईश हैं। अहो अम्ब! क्या तू गिरीश † नन्दिनी है? यों स्कन्द का ...यह सुन के छिटकती मुसक्यान से मनोहर मुख झुकाये गौरी सर्वदा तुम्हारी रक्षा करें। हे नन्दी यह बड़ा बैल भूखा है। हे भृंगी मेरे भाँग ...नहीं है। हे भाई बासुकि लख पड़ता है कि आप अपने बन्धुओं से भेंट के ...लिये उत्कण्ठित हैं। यों बहाने से नन्दी आदि को बाहिर टरका देने के ...विचार से सादर सम्भाषण करते जिन शिव को पार्वती ने लजा के मुस- ...कराकर ताका वे सर्वदा तुम्हारी रक्षा करें।

* यह ग्रन्थ प्रसिद्ध महाकवि के रचयिता पण्डितराज जगन्नाथ का बनाया है। ये दिल्ली बादशाह के यहां थे—अनुवादक।

† गिरीश शिव का भी नाम है। देखो अमर कोष— अनुवादक।

"उत्पत्तिस्थितिसंहृतीर्वितनुते विश्वस्य यः स्वेच्छया
तद्विश्वं परिस्फुरन्नपि न यः प्राकृतैर्ज्ञायते ।
यत्तत्त्वं विदुषां न संसृतिसरित्पूरे पुनर्मज्जनं
सोऽयं वः स्थिर भक्तियोगसुलभो भूयाच्छिवो भूतये ॥"

अर्थात्—जो तत्त्व, स्वेच्छा से संसार का सृजन, पालन और संहार करता है ; जो संसार को थांभे संभाले हुए चैतन्य रूप से भासमान है, और मूढ़ जिसे नहीं पहिचानते और जिस को लख लिये विद्वान् लोग इस संसाररूपी नदी के वेगवन्त प्रवाह में नहीं बूड़ते ; जो अविचल भक्ति उपासना से सुलभ है ; वह तत्त्व शिवात्मक है तुम्हारी भलाई के अनुकूल हो—

कवि ने उक्त विवृति की समाप्ति में निज निवासभूमि यड़स्या गांव का बखान किया है ।

"कालीपीठोपकण्ठस्थलमिलितयपुस्तालिगञ्जप्रतीच्या-
मान्ते शस्तैर्द्विजौघैः प्रथिततमतमुर्या पुरी पण्डिताढ्या ।
यड़स्यासंज्ञाभिपज्ञा कलितकुलचतुःसागरीरत्नपूर्णैः
सावर्णैः स्थापितोऽभूदतिविमलमतिर्यन्ततस्तत्रपूर्वम् ॥"

अर्थात्—कालीपीठ के पास बसे तालीगञ्ज से पश्चिम में यड़श्या नाम का ग्राम है। वहां न केवल विप्र श्रेष्ठों का समूह बरन विद्वन्मण्डली वास करती है ; ...गिनि न्यायों को विजय करके उन के चारो समुद्रों के रत्नों को लाके जिन ने अपने पास रख छोड़ा, ऐसे सावर्णों ने पहिले इस ग्राम में यत्न से ले आके जिस अति निर्मल मतिवाले को बसाया ।

इस विवृति के अतिरिक्त 'चामुण्डाशतक' नाम एक खण्डकाव्य भी बनाया है । उस के पढ़ने से इन की अद्भुत कविताशक्ति छिपी नहीं है। यद्यपि यह कविता इन की अल्पवयावस्था में बनाई है तौ भी ... और अलङ्कार के ठौर ठिकाने विन्यास करने में रत्तक भी चूक होने पाई है। इस के आरम्भ का श्लोक यथा—

"येषां पुण्यमगण्यमन्यजननैर्धेणीकृतं जृम्भते
धन्यास्ते यदपङ्कजान्तररजो ध्यायन्ति विन्दन्ति ते ।
न प्राचीनमलुप्तमाणमथवा पुण्यं नवीनं न मे
चामुण्डे नरमुण्डमालिनि मम क्लेशापहा सत्वरम् ॥"

अर्थात्—जिन जनों ने पूर्वजन्म में अपरिमित पुण्यराशि सञ्चय किया है वे धन्य हैं । वे ही तेरे चरणकमल के भीतर के पराग का ध्यान करते हैं । हे नरमुण्डमाला पहिने चामुण्डे ! मेरे पास न पूर्व जन्म का और

नाम व्याकरण ग्रन्थ बना के संवत् १९०८ वा १७७३ शक
में छपवाया । उस के आरम्भ का श्लोक यह है—

"अभिवाद्य जगद्वन्द्यां देवीं वाचामधीश्वरीम् ।
शब्दार्थरत्नं क्रियते श्रीतारानाथशर्मणा ॥"

अर्थात्—जगत् से वन्दनीय वागीश्वरी (सरस्वती) देवी की वन्दना
करके श्री तारानाथ शर्मा 'शब्दार्थरत्न' रचता है ।

इस ग्रन्थ की भूमिका में इन ने जो पद्य रचे हैं, उन के पढ़ने से
इन की कविताशक्ति का अच्छा परिचय हो सकता है ।

वर्द्धमान प्रान्त के अन्तर्वर्ती अम्बिका ग्राम इन की निवासभूमि है ।
न्याय आदि सब शास्त्रों में पारंगत हैं ।

श्रीयुक्त क्षेत्रपाल स्मृतिरत्न ।

कलकत्ते के शोभाबाजार वासी श्रीयुक्त राजा राधाकान्तदेव के गुणों
की प्रशंसा में इन ने "राधाकान्तचम्पू" नामक एक काव्य बनाया है । उस
के आरम्भ का श्लोक यह है—

"वन्दे हेरम्बपादाम्बुजयुगममरस्तोमसम्पूज्यमानं
संसाराब्धिप्रयाणान्तरमिह परतः शिवलोकाभिर्वाजम् ।
स्निग्धस्वान्तान्धकाराहरकरनिकरं दानवैर्वन्दनीयं
सर्वत्रोद्दामरोचिर्विनिहततिमिरं विघ्ननाशाग्निरूपम् ॥"

अर्थात्—इस संसार सागर पार जो शिवलोक है, वहां पहुंचने हेतु
श्रीमान् लम्बोदर के चरणकमलयुगल विघ्नों के विनाश के लिये अनल
रूप हैं । न केवल उन्हें देवगण किन्तु दानव भी वन्दना करते हैं । न
केवल वे सर्वत्र अप्रतिहत निज तेज से बाहिरी अन्धकार मात्र को काटते
किन्तु सेवक के अन्तःकरण में वर्तमान गाढ़ अन्धकार को भी उनके
करों के समूह से नष्ट कर देते हैं । मैं भी उन की वन्दना करता हूं ।

---

* [illegible] —

"शाके रामाब्धशैलेन्दुमाने [illegible] ।
शब्दार्थरत्नं सम्पूर्णं तारानाथविनिर्मितम् ॥"

अर्थात्—[illegible] १७७३ [illegible]
[illegible]

वास्तव में राधाकान्तदेव विविध विद्या विशारद और सर्वगु णालंकृत थे।

स्मृतिरत्न काव्य की समाप्ति में अपना परिचय यों देते हैं—

" इति महामहोपाध्यायमहाराजाधिराज सभास्तारवर्थी कान्तिचन्द्र सिद्धान्त शेखर भट्टाचार्यमहाशयात्मजश्रीदेवपालमहा विरचिता राधाकान्तचम्पूः समाप्ता।" अर्थात् महाराजाधिराज श्रीर कान्तदेव के सभासद् श्रेष्ठ महामहोपाध्याय श्रीदेवपालभट्टाचार्य श्रीयुत कान्तिचन्द्रसिद्धान्तशेखर भट्टाचार्य महाशय के पुत्र हैं। राधाकान्तचम्पू समाप्त भई।

ये वर्द्धमान प्रान्तान्तर्वर्त्ती गुतिपाड़ा ग्रामनिवासी ७ वाणेश्वर वि लङ्कार के वंशज बहुत गुण गौरवापन्न चतुर्भुज न्यायरत्न महाशय पोते हैं।

शक १७७५ में राधाकान्त चम्पू बनी और १७८० शक में छपी।

बाबू नीलरत्न हालदार।

पहिले इन का निवास कलकत्ते के पास चूंचुड़े में था। इन ने न देशभाषाओं में विशेष अभ्यास किया था। तिस का परिचय इन के स लित बहुदर्शन नाम पुस्तक पढ़ने से मिलता है। तद्व्यतिरिक्त श्रीमद्भ गवत की श्रुतिस्तुति और दुर्गापाठ के चतुर्थाध्याय वाली शक्रादिस्तु का भी उल्था बङ्गाली में किया। "श्रुतिगानरत्न" और "पार्वतीगीतरत्न" भी दो ग्रन्थ इन के बनाये हैं। भगवद्गीता का "गीतागीतरत्न" नाम उल बङ्गाली में करने लगे थे पर पूरा नहीं कर पाये। इन की रची इन स पुस्तकों के देखने से स्वीकार करना पड़ता है कि ये भी एक सुकवि थे "श्रुतिगानरत्न" शक १७७५ में छपा। उस के आरम्भ के गीत का ध्रुवप यह है—

" नत्वा श्रीधर सुविमलचरणम्। दृष्ट्वा श्रीधरटीका रचनम्" अर्था श्रीधर (विष्णु) के अति पवित्र चरण को प्रणाम कर श्रीमद्भागवत प श्रीधरस्वामिकृत टीका की वचनरचना देख कर इत्यादि। " जय नारा यण करुणासिन्धो। जय जय कृष्ण पतितजनबन्धो"। हे करुणासागर र कृष्णनारायण आप का जय जय जय हो इत्यादि।

शक १७७६ में छपा। उस का ध्रुवपद यह है—

जय दुर्गे। जय पार्वति मासीद(?) सुदुर्गे॥" इत्यादि।

अर्थात्—हे दुर्गे नारायण पार्वति यार २ तेरे जय हों। अति अलंघ्य
कष्ट में पड़ा हूं। इस वेला तू बैठी मत रह।

बाबू विश्वम्भर पानि।

हुगली प्रान्तान्तर्वर्ती सेनहाट नाम ग्राम में शक १७०७ में जन्म
जन्म भर सत्कर्म में बिताया। ऐसे ही लोगों का नरदेह धारण
समझना चाहिये। इन का देहान्त कलकत्ते में मिति शक १७७६
के सार सत्ताइसवें दिन हुआ।

इन्ने शक १७३७ में बंगभाषा में "जगन्नाथ मंगल" नाम पुस्तक
। पश्चात् थोड़ेही दिनों में संस्कृत भाषा सीखी। कई एक संस्कृत
ों के आधार से बंगाली में "वृन्दावनप्राप्त्युपाय", "प्रेमसम्पुट",
रत्नमाला", और 'कन्दर्पकौमुदी' * ये पुस्तकें बनाईं। उनमें कहींर
संस्कृत की रचना भी भरते गये हैं। आगे चल के आप भी संस्कृत
रचना में पटु हुए। तब गोविन्दलीलामृत नामक ग्रन्थ के उतारे में
ीर्ति वर्णनात्मक संस्कृत में 'संगीतमाधव' नाम काव्य बना के अपना
सफल किया। इस में भजन के पद्य भी हैं। उसी से इस का
संगीत माधव रक्खा। इस के आरम्भ का श्लोक यह है—

" श्रीगुरुं करुणासिन्धुं सर्वशक्तिप्रदं विभुम्।
तत्त्वातीतं सर्वतत्त्वस्वरूपं प्रणमाम्यहम्॥"

अर्थात्—सर्वशक्ति अथवा सब को शक्ति देने हारे करुणासागर
को जो प्रकृति आदि तत्त्वों से परे और सर्वतत्त्व स्वरूप आप
यापक हैं, मैं प्रणाम करता हूं।

यह पुस्तक शक १७६८ में प्रस्तुत हुई। यथा—

" शाके मृहर्त्वर्णवरोहिणीशे श्रीराधिकाजन्मदिनेऽतिपुण्ये।
दीनेन विश्वम्भरदासकेन संवर्णितोऽभूदतियत्नतो यं॥"

अर्थात्—तुच्छ जीव विश्वम्भरदास ने बड़े यत्न से शक १७६९ में
पुनीत राधा की जन्म तिथि को भलीभांति से यह वर्णन बना के
किया।

बने की मिति शक १७८२ है।

---

* "वृन्दावन प्राप्त्युपाय" पद्मपुराण के पाताल खण्ड का और "प्रेमसम्पुट" [illegible]
[illegible] पुस्तक का अनुवाद है। "रत्नमाला" में नाना ग्रन्थों से [illegible]
[illegible] किये हैं। "कन्दर्प कौमुदी" शृंगाररसात्मक काव्य है।

कविकेशरी।

यह उपनाम है। इन के मूल नाम धाम का पता नहीं। इन्हें ने छन्दों में कृष्णलीलामयी 'हरिकेलिकलावती' नाम पुस्तक बनाई उसे श्रीयुक्त भीमलोचनसंन्याल की आज्ञा से श्रीयुक्त पीताम्बर ने संशोधनकर शक १७८२ में मुद्रित कराया।

✓ कृष्णचन्द्र (कालाचान्द) शिरोमणि।

इन ने नन्ददुलारे की अर्चामूर्त्ति की स्तुति में 'पुष्पमाला' नाम छोटी सी पुस्तक बनाई है। उस के आरम्भ का श्लोक यह है—

"श्रीमन्नन्ददुलाल यामि शरणं त्वामेव देवं परं
संसारार्णवकर्णधार करुणाधार प्रभो तारय।
मज्जन्तं भववारिधौ बहुविधैर्भारैरसंतारकं
यादांसीव बुभुक्षया परिजनाः संमज्जयन्तीह माम्॥"

अर्थात्—हे दयानिधे प्रभो नन्द दुलारे! संसार सागर में नाना के भार धारण किये मैं बूड़ता हूं। कोई पार करनेहारा (कनहार) है। जो परिजन हैं वे भूखे जल जन्तुओं के तुल्य खाऊ खाऊ कर मुझे और भी बुड़ाते हैं। यहां देवदेव तुम ही केवल नाव पार ले जाने वाले केवट हो। मैं तुम्हारेही शरणागत हूं। मुझे पार पहुंच

इन शिरोमणि भट्टाचार्य्य महाशय की निवासभूमि कलक पास चालक नाम ग्राम है। पुष्पमाला १७८४ शक में छप के शित हुई।

श्रीताराकुमार चक्रवर्त्ती।

ये कलकत्ते के संस्कृत कालेज के विद्यार्थी हैं। इन ने शिव बनाया है। उस के आरम्भ का मङ्गलश्लोक यह है—

"मूर्द्धप्रोद्भासिगङ्गेक्षणगिरितनयादुःखनिश्वासपात-
स्फायन्मालिन्यरेखाच्छविरिव गरलं राजते यस्य कण्ठे।
सोऽयं कारुण्यसिन्धुः सुरवरमुनिभिः स्तूयमानो वरेण्यो
नित्यं पादयायात् सततशिवकरः शङ्करः किङ्करं माम्॥

... करुणासागर, सर्वदा कुशलक्षेमकर्त्ता शंकर देव श्रेष्ठ और मुनिगण करते रहते हैं। मुझ सेवक की

जोखिमों से रक्षा किया करें। शिव के गले में जो विषपान का काला चिन्ह दिखाई देता है; उस पर उत्प्रेक्षा की जाती है कि शिव के सिर पर शोभमानगङ्गा देख २ पार्वती को सौतिया डाह होता है; उसी ज्वलन से उन के मुख से दुःख की धनी २ उसासें निकला करती हैं; उन्हीं के बार २ लगते रहने से शिव का गला मानो काला पड़ गया है।

इन ने पुस्तक की समाप्ति में अपना परिचय दिया है और ग्रन्थ बनने का समय भी बतलाया है। यथा—

"शाके सुहृद्वसु सरित्पतिकान्तमाने
ध्यात्वा हृदा पदयुगं द्विजराजमौलेः।
श्रीकृष्णमोहनशिरोमणि सूरिज श्री-
ताराकुमाररचितं शतकं समाप्तम् ॥"

अर्थात्—हृदय में चन्द्रमौलि शिव के चरणयुगल का ध्यान धर के [पण्डि]त श्रीकृष्ण मोहन शिरोमणि के पुत्र श्रीताराकुमार ने शक १७८६ [मे]ं यह शिवशतक बना के समाप्त किया।

यह पुस्तक इसी शक में छपी।

इन ने गौड़ भाषा में "जीवनमृगतृष्णा" नाम एक और पुस्तक बनाई है।

श्रीप्राणकृष्णद्विज।

इन ने संस्कृत "शिवशतकस्तोत्ररत्न" नाम एक पुस्तक रची। उस के आरम्भ का श्लोक यह है—

"गुणातीतोऽपीशा गुणिनि गुणमय्या गुणवशात्
गुणाति प्रत्युक्त्या गुणविदनुशास्ति श्रुतिगणः।
यतो निर्व्यग्रगुणये क्वचिदपि न वृत्तिर्गुणिविदा-
मतस्त्वां संस्तोतुं सगुण विगुणोऽपि प्रभवति ॥"

अर्थात्—हे सगुणमूर्ते भगवन् आप माया के गुणों से परे हैं, तथापि सत्त्व रजस् और तमस् इन तीनों गुणों की समष्टिमयी जो माया शक्ति है, उस के गुणों से निर्लिप्त रह के भी आप माया के अनिर्वचनीय योग से माया की सृष्टि के लिये जो तनिक ताक देते हैं, उसी से उपचार से माया के गुणपर्यन्त ही पहुंच रखनेहारे वेदवाक्यसमूह आप को सगुण कह के अधिकारियों के प्रति [illegible] करते [illegible] किसी भी गुणों की पहिचान रखता हो पर [illegible] परे आप के परम धाम के निरूपण में एक [illegible] है। इस लिये [illegible] गुण ही के

कथन में प्रयुक्त हो सकता है परन्तु यह भी शापथ नहीं है कि गुर्जर ही सगुण के गुण मान करे गुणरहित अन न करने पायें।

इन ने न तो श्लोक में अपना परिचय दिया और न पुस्तक बनाने की मिति बतलाई। पुस्तक की बनावट देखने से प्राचीन रचना जंचती है। पुस्तक की समाप्ति में केवल एक श्लोक में इन ने अपना नाम सूचित किया है। यथा—

> "इति शिवशतकं श्रीमाणकृष्णद्विजेन
> व्यरचि नियततुरं स्तोत्ररम्यं सयत्नम्।
> सुविहितशिवपूजा पूर्वमेतस्य पाठा-
> दभिमतफलविधाता श्रीशिवः प्रीतिमेति॥"

अर्थात्—श्रीमाणकृष्ण ब्राह्मण ने यत्नपूर्वक यह शिवशतक निर्माण किया। जो इसे पाठ करेगा उसे यह उपटेगा नहीं किन्तु नित्य नवीन प्रिय बोध हुआ करेगा। शास्त्रोक्त विधि अनुसार शिवपूजन अनन्तर इस स्तोत्र के पाठ करने से प्रसन्न हो के श्रीशिव पाठकर्त्ता के सकलमनोरथों को सफल करेंगे।

श्रीयुक्त बाबू हितलाल मिश्र।

इन का निवासस्थान वर्द्धमान के अन्तर्वर्त्ती राईपुर नामक ग्राम में है। ये कनौजिया ब्राह्मण और वर्द्धमान के महाराज के पुश्तैनी गुरुवंशज हैं। भगवद्गीता पर श्रीधरस्वामि कृत जो सुबोधिनी टीका है, उस का इन ने बङ्गाली में उल्था किया है। उस के आरम्भ में कई एक संस्कृत के श्लोक भी लिखे हैं और रामगीता पर इन ने संस्कृत तिलक किया है। उस के मङ्गलाचरण का श्लोक देखने से द्योतित होता है कि ये भी एक कवि थे।

भगवद्गीता वाले उल्थे के मङ्गलाचरण का श्लोक यह है—

> वन्दे कृष्णं सुरेन्द्रं स्थितिलयजनने कारणं सर्वजन्तोः
> स्वेच्छाचारं कृपालुं गुणगणरहितं योगिनां योगगम्यम्।
> द्वन्द्वातीतं कमन्तं (?) हरमुखविबुधैः सेवितं ज्ञानरूपं
> भक्ताधीनं तुरीयं नवघनरुचिरं देवकीनन्दनं तम्॥

अर्थात्—भक्तपरवश, नवघनसदृश मनोहर, श्यामशरीर, कृपालु, के गुणों से निर्लिप्त, निरञ्जन योगियों की योगसमाधि में ध्यानगम्य,

"ध्यात्वा तच्चरणारविन्दयुगलं श्रीनन्दनन्दप्रदा
राधामानतरङ्गिणी विरचिता श्रीनन्दमानप्रदा ॥"

अर्थात्—इन्द्र, ब्रह्मा और बृहस्पति इत्यादिकों की प्रार्थना से सनात पूर्णब्रह्म प्रभु श्रीरामचन्द्र भूमिभार हरणार्थ शरीर धारण कर अवतो हुए। उन के चरणकमलयुगल का ध्यान करके श्रीलक्ष्मी के आनन्दद यक विष्णु को आनन्द देनेहारी "राधामानतरङ्गिणी" नाम पुस्तक बनाई जो इसे पढ़ेगा उसे धन, सुख और आदर मिलेंगे।

"शैलचन्द्ररसरसाशाके मानतरङ्गिणी।
श्रीनन्देन कृता माघे नन्दानन्दप्रदायिनी॥"

अर्थात्—सात के पूर्व में एक धरो फिर छ के अनन्तर एक धरो यों १७६१ होते हैं। इसी १७६१ अंक के शक के माघमास में श्रीनन्द कुमार ने "राधामानतरंगिणी" बनाई। इस के निर्माण से नन्दा अर्थात् राधा आनन्दित हों।

जान पड़ता है कि यह पुस्तक शक १७६६ में बनी होगी पर श्लोक में विन्यस्त शब्दों से उल्लिखित मिति में कुछ गड़बड़ पड़ती है कि नहीं इस का उधेड़ बून करने का भार पाठक महाशयों के ऊपर आरोपित है

सुनते हैं कि इन ने "हंसदूत" नामक एक और भी काव्य बनाया है पर हमारी दृष्टि तले वह नहीं आया। इस काव्य के किसी श्लोक का एक देश मेरे कान में पड़ा। उस से बूझ पड़ता है कि इन को उत्प्रेक्षा करने की अच्छी बुद्धि थी। यथा—

"मृदु मृदु श्वासेन हंसध्वनिः"

अर्थात्—कोई जन हंस से कहता है कि इस समय श्रीमती विरहिणी और कुछ नहीं कहती है। केवल उस की मृदु २ सांसद्वारा हंसध्वनि हो रही है (इसलिये हम तुम्हें संवाद देने आये हैं)।

श्रीयुक्त रामदयाल तर्करत्न।

ये वर्द्धमान के महाराज के परम आदरपात्र पण्डित हैं। इन की निवासभूमि भाटपाड़ा है। "अनिलदूत" नाम एक खण्ड काव्य इन का बनाया है। किन्तु आज तक वह सर्वसाधारण के दृष्टिगोचर नहीं हुआ।

इस काव्य के आरम्भ का श्लोक यह है—

"श्रीमत्कृष्णे मधुपुरगते निर्मला कापिबाला
गोपी नीलोत्पलनयमजां वारिधारां वहन्ती।

म्लानिव्याप्त्या शशधरनिभां धावयन्ती तदास्ये
गाढ़ प्रीतिच्युतकृतजरा निर्भरं कातराभूत् ॥"

अर्थात्—कोई बालागोपी जो पहिले रूपवती तरुणी थी, श्रीकृष्ण के मधुपुर सिधार जाने पर गाढ़ी प्रीति के विच्छेद से जनित शोक के दुःख से जर्जर और निपट कातर हो के नीलकमल तुल्य नयनों से इतनी अश्रुधारा बहाने लगी कि उस से चन्द्र सदृश मुख की कान्ति धुलकर म्लान पड़ के वह युवावस्था ही में जराग्रस्त सी हो गई। *

श्रीयुत अम्बिकाचरणदेव शर्मा।

ये कलकत्ते के हथियाबाग वाले प्रसिद्ध श्रीयुक्त.........महाशय के पुत्र हैं। इन की पूर्वनिवासभूमि वर्द्धमान प्रान्तान्तर्वर्त्ती उपलातिबड़ा नाम है। इन ने 'पिकदूत' नाम एक खण्डकाव्य बनाया। वह आज तक सर्वसाधारण के निकट प्रकट नहीं हुआ। उस के प्रारम्भ का श्लोक यह है:—

" कुञ्जं कूजन्मधुकरकुलैः सङ्कुलं गोपकान्ता
काचित्फुल्लकमलनयना गच्छदङ्गप्रधाना।
तस्मिन्नेकं मधुरवचनं कोकिलं पादपस्थं
दृष्ट्वाहृष्टावददिदमसौ कृष्णवत्कान्तिभाजम् ॥ "

अर्थात्—प्रफुल्ल कमलतुल्य वदनी कोई ग्वालिनी कोकिलों की कूक और भ्रमरों के गुञ्जार से व्याप्त निकुञ्ज में एकली निकल कर चलीगई। वहां श्रीकृष्ण के देह के रंग की नाई काले रंग के कोकिल को पेड़ पर बैठ कर मधुर कूजन करता देख के हर्षित हो यह कहने लगी।

श्रीयुत तारकनाथ तर्करत्न।

ये वर्द्धमान के महाराज के प्रधान मन्त्री हैं। इन की निवासभूमि हुगली प्रान्तान्तर्वर्त्ती बंशपाटी नाम ग्राम है।

यद्यपि इन ने कोई काव्यग्रन्थ नहीं रचा तौ भी इन की जो फुटकर उत्कृष्ट कविता वर्त्तमान हुई उसी से स्वीकार किया जाता है कि ये एक महाकवि हैं। इन के रचित दो श्लोक नीचे दर्शाये जाते हैं। यथा—

* [illegible]

" यं जानन्तिमिदात्मना विभुरिति प्रायेण नैयायिकाः
सांख्यास्त्वागमजल्पनोपममम पातञ्जला इत्यपि ।
काणादाः सहकारणं प्रतिभुवं कार्येषु मीमांसकाः
कोऽप्येकाजयति प्रमाश्रयतयास्त्यात्मेति वेदान्तिनः ॥ "

अर्थात्—ईश्वर और जीव में भेद है; इस मत पर आस्था रखने
अद् बुद्धि लोग विशेष कर के नैयायिक ईश्वर को व्यापक जानते
कापिलसांख्य मानने वाले लोग उसे पुरुष बोल कर कुछ भी न
धरनेवाला बतलाते हैं। सांख्य के एक देशी पातञ्जल योग मत के विश्वा
लोग उस को लगभग कापिलों ही के तुल्य मानते हैं, इन दोनों सा
प्रस्थानवालों के मत में ईश्वर न केवल निरर्थक प्रत्युत बकरे के गले
लटकते स्तन की नाई संसार के पक्ष में भारभूत प्रतीयमान होता
वैशेषिक दर्शनवाले लोग ईश्वर को प्रत्येक कार्य का काल आदि की
साधारण कारण मानते हैं। पूर्व मीमांसा माननेवालों के एक देशी
कर्म के उत्पद्यमानफलों के प्रति भगवान को प्रतिभू अर्थात् जामिन
स्वीकार करते हैं। वेदान्ती लोग बतलाते हैं कि वह ईश्वर कोई हम
का एक ही आत्मा विराजमान है; जिस के अज्ञान के आश्रय जीवगण

दूसरा श्लोक यथा :—

" स्थाणुस्त्वं स्वयमेव हे पशुपते पुत्रो विशाखोऽपि ते
किञ्च त्वञ्च जटालवालसलिलो योप्यप्यपर्णा तव ।
त्वत्तः किं फलमश्नुमो भुवि वयं किंवा त्वया दीयते
जानीमस्त्वदुपासनेन सुचिरं जन्मक्षयः केवलम् ॥ "

अर्थात्—हे पशुपत शिव तुम आप स्थाणु * हो। तुम्हारा
विशाखें (स्कन्द का नाम) है पक्षान्तर में अक्षरार्थ शाखा रहित
है। तुम्हारी जटा रूपी थाले में गङ्गाजल है (तात्पर्य जिस की
थाला जल से भरा हो वह पेड़ फल दे सकता है।) स्त्री तुम्हारी अप
(पार्वती का नाम) है पक्षान्तर में पत्र रहित है। पृथ्वी में तुम हमें
फल देओगे और क्या तुम से हम पायेंगे। हम यही जानते हैं कि तुम्हा
सदा सेवा करते रहना क्या है। निरा जन्म गंवाना (मोक्षप्राप्ति) है।

---

* स्थल में भी स्थित रहने से शिव को स्थाणु संज्ञा है। ठूंठे पेड़ के वृक्ष को